Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दयानन्दसन्देश

वेद-विशेषाङ्क (श्रावणी पर्व पर)

वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द

(जन्म १८२४ ईस्वी, निर्वाण १८८३ ईस्वी)

प्रकाशक

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

४५५, खारी बावली, दिल्ली-११०००६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विशुद्ध-मनुस्मृति

(प्रक्षिप्त श्लोक रहित हिन्दी भाष्य, प्रक्षिप्त श्लोकों को सप्रमाण एवम् अन्तःसाक्षी पूर्वक समीक्षा सहित और विशुद्ध मानवधर्म प्रकाशन)

- वैदिक सिद्धान्तों से अपरिचित एवम् अपरिपक्व बुद्धि वाले छात्रों के लिए परमोपयोगी।
- प्रक्षिप्त श्लोकों से रहित होने पर भी अध्याय या प्रकरण के अन्त में प्रक्षिप्त समीक्षा सहित।
- अवैदिक एवम् असंगत श्लोकों से रहित होने से वर्णाश्रम धर्मों के विषय में भ्रान्त धारणाओं से रहित।
- महर्षि दयानन्द द्वारा व्याख्यान श्लोकार्थों से अलंकृत।
- अन्य विशेषताएँ 'मनुस्मृति' की भांति।

विशेष जानकारी के लिए सूची पत्र मंगायें मूल्य : १००/- रु०

प्राप्ति स्थान :

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

४५५, खारी बावली, दिल्ली- ११० ००६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दयानन्दसन्देश

वेद-विशेषाङ्क (श्रावणी पर्व पर)

वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द

(जन्म १८२४ ईस्वी, निर्वाण १८८३ ईस्वी)

प्रकाशक

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

४५५, खारी बावली, दिल्ली-११०००६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अगस्त, १६६८

वर्ष २६ : अंक १०

दयानन्दाब्द : १७४

विक्रम संवत् : श्रावण, २०५५

सृष्टि-संवत् : १,६६,०८,५३,०६६

संस्थापक : स्व० दीपचन्द आर्य

सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री

प्रकाशक : धर्मपाल आर्य

व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४५५, खारी बावली, दिल्ली-६

दूरभाष : ३६५८३६०, ३६५३११२

प्रस्तुत विशेषांक : १०.०० रु०

एक प्रति २.५० वार्षिक शुल्क २५)

आजीवन सदस्यता २५०)

विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

१. सम्पादकीय

२. राष्ट्रगीत

३. योग-चमत्कारों के विषय में स्वामी दयानन्द के विचार

४. वेद में मैं एवं मेरी मातृभूमि

५. बहुदेववाद-हिन्दू धर्म का अभिशाप

६. क्या शाखाएं वेद हैं ?

७. वेदों का आविर्भाव : महर्षि का वक्तव्य

८. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में उपासना

६. वेद महिमा महान् है

१०. वैदिक मान्यताएं और महर्षि दयानन्द

११. वेदों में वन्य जीवन

१२. पाठकों के पत्र तथा सम्मतियां

१३. वेद-प्रचार कर्त्तव्य एवं व्यवस्था

१४. साहित्य समीक्षा

१५. वैदिक राष्ट्रवाद

१६. पाप-पुण्य मीमांसा

१७. वेद-प्रचार और आर्यसमाज

१८. शिखा-सूत्र की रक्षा का पर्व तथा वेद-प्रचार सप्ताह

१६. सृष्टिसंवत् गणना ऐतिहासिक

२०. वेद ही क्यों ? बाईविल व कुरान क्यों नहीं ?

२१. वेद गौरव

२२. वेदार्थ-ज्ञान में वेदांगों का महत्त्व

सत्यार्थप्रकाश अजिल्द चौदह सौ रुपये, कपड़ा जिल्द सोलह सौ रुपये, और सजिल्द अठारह सौ रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सम्पादकीय

स्वाध्यायशील पाठकों और वेदभक्त आर्यपुरुषों के समक्ष दयानन्द-सन्देश का श्रावणी पर्व पर 'वेद-विशेषाङ्क' प्रकाशित करते हुए जहाँ हमें अतीव प्रसन्नता हो रही है, वहाँ हमें वेद के प्रति अनास्था रखने वालों के प्रति सजगता एवं सतर्क रहने के लिए प्रोत्साहन भी मिल रहा है। १९वीं शताब्दी में जो हमारे अन्दर वेद-ज्योति ने सन्मार्ग दर्शन होने से हमें सचेत किया था, आज वही ज्योति जिसने समस्त मतमतान्तर-वादियों के भीषण दुर्गों को ध्वस्त करके सत्य को ग्रहण करने के लिए उद्यत किया था, आज उन्हीं वेदानुयायियों को शिथिल, उपेक्षित, उत्साहहीन देखकर अत्यन्त दुःख भी होता है। इसका कारण स्वाध्यायहीनता व श्रद्धाहीनता भी है किन्तु अर्थ और काम की आसक्ति प्रमुख हैं। आज का मानव भौतिक चकाचौंध में इतना अधिक व्यस्त हो गया है कि जो आर्यजनता एक सजग-प्रहरी बनकर काम कर रही थी, वह भी उदासीन हो गयी है। महर्षि मनु ने सृष्टि के प्रारम्भ में ही आर्य जाति को सचेत करते हुए लिखा था—

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।।

अर्थात् धर्म का ज्ञान उन व्यक्तियों को नहीं होता, जो अर्थ और काम अथवा काञ्चन कामिनी में आसक्त हैं और धर्म की जिज्ञासा रखने वालों को वेद ही परम प्रमाण हैं। यही व्यवस्था लगभग २ अरब वर्षों तक भारत में चलती रही। इसका मूल कारण था इस देश के सच्चे ब्राह्मण व एषणाओं से रहित साधु-सन्त, जिन्होंने राजा महाराजा शासक वर्ग को तथा जनता को सर्वदा सावधान किया था। अच्छे, ज्ञानी, सदाचारी उपदेशक व पुरोहित भी इस व्यवस्था में परम सहायक रहे थे। जिन्होंने स्वार्थ के दलदल से ऊपर उठकर निश्छल भाव से सत्य ज्ञान की सदा रक्षा की और देश की जनता ने ऐसे परोपकारी सन्त पुरुषों का सदा सम्मान करके उनका उत्साह वर्धन किया। जिनके विषय में महर्षि मनु ने लिखा था—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

पृथिवी पर बसे सभी देशों के मानव अपने-अपने चरित्रों की अथवा कर्त्तव्यों की शिक्षा भारत में उत्पन्न सच्चे सन्त पुरुष ब्राह्मणों से लिया करें।

भारत देश का समस्त इतिहास इस बात का साक्षी रहा है। कौन नहीं जानता महर्षि वसिष्ठ को, जो चक्रवर्ती सम्राट् रघुकुलवंशियों के कुल गुरु थे। जिन्होंने पुत्र मोह में फंसे राजा दशरथ को सावधान करते हुए निर्भय होकर कहा था—

प्रतिश्रुत्य करिष्य इति उक्तवाक्यमकुर्वतः।
इष्टापूर्त्तवधो भूयात्तस्माद् रामं विसर्जय।। (वा०२१ सर्ग)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थात् जो राजा किसी बात को कहकर उसका पालन नहीं करता, उसके समस्त शुभ कार्यों(पूर्त्त) का तथा यज्ञों के फलों का विनाश हो जाता है। अतः राजन्! निश्चिन्त होकर पुत्रमोह छोड़कर श्रीराम को महर्षि विश्वामित्र के साथ भेज देवें। इसी प्रकार महाभारत के समय पुत्रमोह से ग्रस्त राजा धृतराष्ट्र को तत्कालीन महात्मा विदुर व संजय ने सदा ही हितकर सच्चे उपदेश दिये और कहा—

सुलभा पुरुषा लोके सततं प्रियवादिनः।

अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।।

संसार में राजन्! प्रिय बोलने वाले चाटुकार व्यक्ति बहुत मिल जाते हैं। परन्तु सच्चे और हितकर किन्तु कड़वी बात कहने वाले सन्त पुरुष विरले ही होते हैं।

वर्तमान परिस्थिति में वेद-ज्ञान की महत्ती आवश्यकता-

हमारा क्या कर्त्तव्य है और क्या अकर्त्तव्य, क्या हमें इष्ट है और क्या अनिष्ट, यह निर्भ्रान्त बोध वेद-ज्ञान के बिना नहीं हो सकता। सत्य ज्ञान ही कहाँ कीचड़ है, कहाँ कूप है, इसका बोध हमें वेद कराता है। और इस सत्यज्ञान से ओत-प्रोत व्यक्ति की निश्चित धारणा बन जाती है-

(१) नहि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।

(२) नहि वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः।

(३) न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।

सत्याचरण से बढ़कर कोई धर्म नहीं है और असत्य से बड़ा पाप नहीं। मनुष्य कितना भी धन संचय कर ले परन्तु धन से उसकी तृप्ति कभी नहीं होती। और मनुष्य की इच्छाओं की तृप्ति कभी नहीं होती।

उपर्युक्त वैदिक शिक्षाओं के कारण मनुष्य धर्म-पथ से कभी विचलित नहीं होता। आज जिन शिक्षाओं के अभाव में राजनीति के कर्णधारों की स्थिति विकृत हो गई है, वहाँ आर्यसमाज जैसी जागरूक और जुझारू संस्थाओं का भी बुरा हाल हो गया है। इसके उच्च पदों पर आसीन व्यक्ति प्रायः वैदिक आस्थाओं के विरुद्ध आचरण के कारण चाटुकार वृत्ति में लिप्त हो गये हैं, जिसके कारण इनका चरित्र दूषित हो गया है। पद-लोलुपता, स्वार्थ, लोभवृत्ति जैसे सामाजिक दोष तो इनमें पदे पदे व्याप्त हो गये हैं। जिन के कारण सामाजिक, शारीरिक, आत्मिक उन्नतियाँ अवरुद्ध हो गई हैं। जिस संस्था का चरित्र इतना उन्नत था कि आर्यसमाज के व्यक्ति का नाम लेना भी न्यायालय में प्रामाणिक होता था कि ये व्यक्ति झूठ नहीं बोलते, आज उस संस्था में भी बड़े-बड़े घपले सुनाई दे रहे हैं, और उनके प्रकट होने पर उनकी रक्षा में ही समाज के धन का अपव्यय हो रहा है। जो धन वेद-प्रचार में लगना था, उसका अपव्यय कामनाओं की तृप्ति में हो रहा है। अब इन दोषों को छोड़कर ही समाज की प्रतिष्ठा को बचाया जा सकता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
इसी प्रकार व्यक्ति के चरित्र के सुधार से राजनयिक व्यक्तियों को भी सुधारा जा सकता है। राजनयिकों के सुधरने से राष्ट्र का चरित्र भी सुधर जायेगा। राष्ट्रीय नेताओं के सुधरने से राष्ट्र सुख व शान्ति से रह सकता है। इस कार्य में चाटुकारिता की वृत्ति बड़ी घातक सिद्ध हुई है। चाटुकारिता की वृत्ति एक कुत्तों जैसी वृत्ति है, जिसके कारण मानवीय गुणों (सत्य, स्वाभिमान, निर्भयतादि) का ह्रास हो जाता है और व्यक्ति शासक की उचित या अनुचित बातों को ही स्वीकार करता रहता है। इसीलिए राष्ट्र के बड़े-बड़े नेता, अधिकारी तथा उनके सम्बन्धी भी चारा या हवाला जैसे काण्डों में लिप्त हो रहे हैं। न्यायालय के न्यायाधीश भी चाटुकारिता की वृत्ति से बचे न होने से आज सच्चे न्याय से जनता वंचित हो गई है। इसलिए भारतीय संस्कृति के मूलाधार नैतिक मानदण्डों की सुरक्षा करना बहुत आवश्यक है और यह सुरक्षा वैदिक शिक्षाओं पर आचरण से ही सम्भव है। सत्य ही कहा है-

आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।

जो व्यक्ति जानकर भी आचरण नहीं करते, उन आचरणहीनों को वेद भी पवित्र निर्दोष नहीं कर सकते। अतः हमें वैदिक शिक्षाओं को पढ़कर उन पर चलना चाहिये।

वेद-विशेषांक तथा श्रावणी पर्व से सम्बन्ध

श्रावणी का पर्व वेद के स्वाध्याय का मुख्य पर्व प्राचीनकाल से माना जाता है। इसका पूरा नाम श्रावणी उपाकर्म(ऋषि-तर्पण) है। सम्भव है वेद के श्रवण करने से ही यह नाम रख गया हो। चारों वर्णों में प्रथम वर्ण (ब्राह्मण) का वेद का अध्ययन-अध्यापन करना मुख्य कर्त्तव्य माना गया है। 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः' इस निरुक्त वचन से सही स्पष्ट होता है—मन्त्रार्थ-दर्शन के कारण ही 'ऋषि' नाम प्रसिद्ध हुआ। इस पावन पर्व पर वेद का स्वाध्याय प्रारम्भ करने से इसका नाम ऋषि-तर्पण भी प्रसिद्ध हुआ। जिस वस्तु से जिनकी तृप्ति (तर्पण) होती है उसी से उसका नाम पड़ता है, क्योंकि इस पर्व से स्वाध्याय (वेद का) प्रारम्भ होता है अतः ऋषि-तर्पण नाम भी इस पर्व का प्रसिद्ध हो गया। मनु ने कहा है—

स्वाध्यायेनार्चयेद् ऋषीन्।।

स्वाध्याय से ऋषियों का तर्पण किया जाता है। 'स्वाध्याय' शब्द वेद के अध्ययन-अध्यापन के लिए ही प्रसिद्ध है। एक स्थान पर स्मृतिकार लिखते हैं-

श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाप्युपाकृत्य यथाविधि।
युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान् विप्रोऽर्धञ्चमान्।।

अर्थात् विप्र-ब्राह्मणादि वर्ण श्रावणी पौर्णमासी से प्रारम्भ करके साढ़े चार मास तक वेदाध्ययन करे। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में ग्रीष्मावकाश की छुट्टियों के पश्चात् विद्यालयों का प्रारम्भ श्रावणी से ही होता था। इसी पर्व पर यज्ञोपवीत बदलने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

की परम्परा है, यह भी विद्या का चिह्न यज्ञोपवीत होने से परम्परा बनी है।

दुर्भाग्य से पौराणिक काल में वेदों का पठन-पाठन कम हो गया और लोग मनोवांछित ढंग से इस पर्व को मनाने लगे। यज्ञों का प्रचलन भी बन्द हो गया। इस पर्व पर स्वयं निर्मित संस्कृत के वाक्यों को बोलकर पर्व को मनाने लगे। जैसे—

ओं ब्रह्म तृप्यताम्। ओं विष्णुस्तृप्यताम्। इत्यादि।

महर्षि दयानन्द की कृपा से नई जागृति आई। वेदभानु के उदय होने पर अन्धकार में जन्मी अवैदिक मान्यताएँ समाप्त हुईं। इसलिए श्रावणी पर्व पर यह 'वेद-विशेषांक' प्रकाशित किया गया है। भगवान् हमें शक्ति व सामर्थ्य देवें कि इस पर्व की महत्ता को समझते हुए हम सदा स्मरण रखें—

(१) स्वाध्यायान्मा प्रमदः।

(२) स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।।

श्रावणी का श्रेष्ठ उत्सव पुण्य पावन पर्व है।

वेदव्रत-स्वाध्याय वैभव आज ही सुख सर्व है।। (स्व० डॉ० सूर्यदेव शर्मा)

आभार प्रदर्शन—जिन वेद-मनीषी विद्वानों ने हमारी अल्पकालीन सूचना पर ही हमें वेद-विषयक लेख भेजे हैं, उनका धन्यवाद करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ और प्रार्थना भी करता हूँ—कई लेख अतीव विस्तृत होने से कुछ अनावश्यक अंशों को हटाया गया है (वह भी कतिपय लेखों में ही) अतः वे अन्यथा न सोचकर हमें क्षमा करेंगे। यद्यपि ऐसा न चाहते हुए ही अपनी स्थिति को देखते हुए ही किया है। शीघ्रतावश तथा कतिपय सम्माननीय विद्वानों से सम्पर्क भी न कर सके, और कुछ विद्वान् ऐसे भी रह गये जो हमें समयाभाव या किसी कार्य-व्यस्तता के कारण लेख नहीं भेज सके हैं, उन सभी का मैं ध न्यवाद करता हूँ। भविष्य में उनका सहयोग पूर्ववत् बना रहेगा, ऐसी आशा करता हूं। और इस अंक के प्रकाशन की समस्त धनादि की व्यवस्था करके जिन्होंने प्रकाशन किया है उन ट्रस्ट के अधिकारियों की भूरि-भूरि प्रशंसा व धन्यवाद किन शब्दों में किया जाये, यह बहुत ही कठिन है, यथार्थ में वे बहुत ही मुक्तकण्ठ से धन्यवाद करने योग्य हैं। इसका कारण यह है कि उन्हें भी एक आत्मसन्तोष तो इससे अवश्य मिलेगा, जिसके कारण वे सदैव ही विशेषांकों के प्रकाशन में सहायक रहे हैं और भविष्य में भी बने रहेंगे। महर्षि दयानन्द के प्रति उनकी अनन्य आस्था ही ऐसे शुभ कार्यों में प्रेरणा देती रहती है। भगवान् इन्हें ऐसी शुभ-प्रेरणा व उत्तम ही स्वास्थ्य देते रहें, ऐसी शुभ आकांक्षाओं के साथ अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

विदुषां वंशवद विनीत—**राजवीर शास्त्री**

श्रावणी सं० २०५५ वि०, ८ अगस्त, १९९८

मोदी नगर (२०१२०४), (गाजियाबाद)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

योग-चमत्कारों के विषय में स्वामी दयानन्द के विचार

डॉ० रामनाथ वेदालंकार, वेदमन्दिर, ज्वालापुर (हरिद्वार)

योग के चमत्कारों, योग की विभूतियों अथवा योग की सिद्धियों के विषय में परम योगी महर्षि स्वामी दयानन्द के क्या विचार थे, इस सम्बन्ध में आर्य विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। यहाँ वस्तुस्थिति स्पष्ट करने के लिए स्वामी जी के विचार उन्हीं के शब्दों में उद्धृत किये जा रहे हैं।

बाबू माधोप्रसाद को लिखे एक पत्र में स्वामी जी लिखते हैं—"देखो, पूर्वकाल में हमारे ऋषि-मुनियों को कैसी पदार्थ विद्या आती थी कि जिससे आत्मा के बल से सब के अन्तःकरण के भेद को शीघ्र ही जान लिया करते थे। जैसे बाहर की पदार्थविद्या से सिद्ध किये हुए रेल, तारादि विद्या को मूर्ख लोग जादू समझते हैं, वैसे ही भीतर के पदार्थों के योग से योगी लोग अनेक अद्‌भुत कर्म कर सकते हैं, इसमें कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि मनुष्य लोग जितनी विद्या बाहर के पदार्थों से सिद्ध करते हैं उससे कई गुणी अधिक भीतर के पदार्थों से सिद्ध कर सकते हैं।"(द्रष्टव्य : ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन, भगवद्दत्त, सन् १९५५, पृष्ठ १४४-४५)।

बम्बई में दिये गये प्रवचन में स्वामी जी ने कहा था—"भीतर के पदार्थ बहुत महान् और गुह्य हैं और इस स्थूल जगत् में जो गुण और चमत्कार देखने में आते हैं उससे करोड़ों गुणे गुण और चमत्कार भीतर विद्यमान हैं। बाहर के चमत्कार इन्द्रियों से ग्रहण किये जा सकते हैं, परन्तु मनुष्य स्थिर होकर शोध करे तो उससे बहुत अधिक चमत्कार भीतर के उसे देखने में आयेंगे।" (द्रष्टव्य : ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ और प्रवचन, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, १९८८, पृष्ठ ५१७-१८)।

यजुर्वेद १७। ६७ के भाष्य में स्वामी जी ने आकाश-गमन की सिद्धि का निम्न प्रकार वर्णन किया है-

पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहम् अन्तरिक्षाद् दिवमारुहम्।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम्।।

पदार्थ—हे मनुष्यो, जैसे किये हुए योग के अंगों के अनुष्ठान-संयम से सिद्ध अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि में परिपूर्ण **(अहम्)** मैं **(पृथिव्याः)** पृथिवी के बीच **(अन्तरिक्षम्)** आकाश को **(उद् आ अरुहम्)** उठ जाऊँ वा **(अन्तरिक्षात्)** आकाश से **(दिवम्)** प्रकाशमान

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सूर्यलोक को **(आ अरुहम्)** चढ़ जाऊँ, वा **(नाकस्य)** सुख कराने हारे **(दिवः)** प्रकाशमान उस सूर्यलोक के **(पृष्ठात्)** समीप से **(स्वः)** अत्यन्त सुख और **(ज्योतिः)** ज्ञान के प्रकाश को **(अहम्)** मैं **(अगाम्)** प्राप्त होऊँ, वैसा तुम भी आचरण करो।

भावार्थ–जब मनुष्य अपने आत्मा के साथ परमात्मा के योग को प्राप्त होता है तब अणिमादि सिद्धियाँ उत्पन्न होती हैं, उसके पीछे कहीं से न रुकने वाली गति से अभीष्ट स्थानों को जा सकता है, अन्यथा नहीं ।

यजुर्वेद के इसी अध्याय के ७१वें मन्त्र के भाष्य में योगी अनेक प्राणियों के शरीर में प्रविष्ट होकर उनकी नेत्रादि इन्द्रियों से देखने आदि व्यापारों को कर सकता है, ऐसा वर्णन है। इस मन्त्र के भाष्य के भावार्थ का कुछ अंश इस प्रकार है–

"योगी पुरुष तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान आदि योग के साधनों से योग (धारणा, ध्यान, समाधिरूप संयम) के बल को प्राप्त हो अनेक प्राणियों के शरीर में प्रवेश करके अनेक शिर, नेत्र आदि अङ्गों से देखने आदि कार्यों को कर सकता है।"

यजुर्वेद १९। ६१ के भाष्य के भावार्थ में लिखा है कि–"निवृत्तिमार्ग में परम योगी योगबल से सब सिद्धियों को प्राप्त होता है।" यजु० १९। ७४ के भाष्य से स्वामी जी का यह अभिप्राय भी विदित होता है कि मोक्षप्राप्ति के लिए योगी को योगसिद्धियाँ पाकर भी उनके अभिमान को छोड़ देना चाहिए। उक्त मन्त्र के भावार्थ के शब्द इस प्रकार हैं–"जो युक्ताहारविहार करने हारे वेदों को पढ़, योगाभ्यास कर, अविद्यादि क्लेशों को छुड़ा, योगसिद्धियों को प्राप्त हो और उनके अभिमान को भी छोड़ के कैवल्य को प्राप्त होते हैं वे ब्रह्मानन्द का भोग करते हैं।"

अणिमा आदि सिद्धियों को स्वामी जी मानस मानते हैं, ऐसा पूनाप्रवचन के प्रवचन संख्या ११ से ज्ञात होता है। उन्होंने अपने भाषण में कहा था–"योगी विभूति को सिद्ध करता है ऐसा योगशास्त्र में लिखा है। अणिमा, लघिमा, गरिमा इत्यादि विभूतियाँ हैं। ये धर्म योगी के चित्त में पैदा होते हैं। सांसारिक लोग 'ये योगी के शरीर में पैदा होते हैं' ऐसा मानते हैं। वह बराबर नहीं है। अणिमा अर्थात् अतिसूक्ष्म पदार्थों से भी मन सूक्ष्म होकर पदार्थों का परिमाण करता है। इसी प्रकार अति स्थूल पदार्थों से भी बड़ा होकर उसका ज्ञान मन से होता है, उसे गरिमा कहते हैं। ये मन के धर्म हैं, शरीर में इनका सामर्थ्य नहीं है।" (द्रष्टव्य : ऋषि दयानन्द सरस्वती के शास्त्रार्थ और प्रवचन, पृ० ३९५)।

उपरिलिखित योगसिद्धिविषयक स्वामी जी के विचारों की तुलना पाठकों को श्री स्वामी जी के साथ हुई कर्नल आल्काट तथा मैडम ब्लैवेट्स्की की वार्ता में वर्णित स्वामी जी के योगसम्बन्धी विचारों के साथ भी करनी चाहिए। उस वार्ता से ज्ञात होता है कि

(शेष पृष्ठ २८ पर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वैदिक राष्ट्र गीत

ओ३म्

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् आराष्ट्रे
राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्।
दोग्ध्री धेनु-र्वोढानड्वान् आशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा
जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्।
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो
न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो न कल्पताम्।।

(यजु० २२। २२)

ब्रह्मन् स्वराष्ट्र में हों, द्विज ब्रह्म तेजधारी।
क्षत्रिय महारथी हों, अरिदल विनाशकारी।।
होवें दुधारु गौएँ पशु अश्व आशुवाही।
आधार राष्ट्र की हों नारी सुभग सदा ही।।
बलवान् सभ्य योद्धा यजमान पुत्र होवें।
इच्छानुसार बरसें पर्जन्य ताप धोवें।।
फल फूल से लदी हों औषध अमोघ सारी।
हो योग-क्षेमकारी स्वाधीनता हमारी।।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेद में मैं एवं मेरी मातृभूमि

डॉ० रघुवीर वेदालंकार उपाचार्य, रामजस कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय

वेद में भूमि को माता एवं मानव को उसका पुत्र कहा गया है। **'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'** अथर्ववेद की यह उक्ति सुप्रसिद्ध है। यहाँ पर भूमि एवं पृथिवी दो पद हैं। भूमि मेरी माता है। इसका सम्बन्ध जन्म से है। माता भी जन्म देती है। पृथिवी के जिस भाग में मेरा जन्म हुआ है, वह भी मेरी मातृ तुल्य है। **भवन्ति अस्याम् इति भूमिः।** जहाँ मेरा जन्म हुआ है, वह मेरी मातृभूमि है। किन्तु मैं केवल इसी छोटे से स्थान का पुत्र नहीं हूँ अपितु पृथिवी = इस समस्त पृथिवी का पुत्र मैं हूँ। पृथिवी का सम्बन्ध विस्तार से है। **प्रथनात् पृथिवी।** अर्थात् जहाँ तक भी यह फैली हुयी है वहीं तक समस्त पृथिवी का मैं पुत्र हूँ। इसमें देश, प्रान्त, नगर आदि की सीमाएं नहीं हैं। समस्त पृथिवी (भूगोल) एक है। यह तो हम ने अपने स्वार्थवश इस विशाल पृथिवी का विभाजन कर डाला। इसको नगर, प्रान्त, देश आदि की सीमाओं में बाँध डाला। पृथिवी तो अपने स्वरूप में उसी प्रकार एक है जैसे कि आकाश। किन्तु हम ने तो पृथिवी की भांति आकाश में भी अपनी-अपनी सीमाएं निंश्चित की हुयी हैं। बिना आज्ञा किसी देश की सीमा में प्रवेश अतिक्रमण मानां जाता है किन्तु यह सब मानवकृत विभाग है। वेद के अनुसार तो हम समस्त पृथिवी के ही पुत्र हैं। यहाँ पर देश आदि की सीमाएं नहीं हैं।

मैं इस समस्त पृथिवी का पुत्र हूँ। मेरे दो कर्त्तव्य हैं—पहला यह कि मैं इस पृथिवी के पृथिवीत्व में वृद्धि करूं। इसका विस्तार करूं जंगलों तथा ऊपर भूमि के रूप में अभी तक जो भूमि ऐसी पड़ी है जहाँ न तो निवास किया जा सकता है, न कृपि आदि। पुत्र होने के नाते मेरा कर्त्तव्य है कि मैं उस भूमि को निवास योग्य बनाऊं। यही भूमि का विस्तार है। अब तक उसका नाम पृथिवी नहीं अपितु जगत् आदि के रूप में था। पुत्र के रूप में मेरा दूसरा कर्त्तव्य हम समस्त पृथिवी की इस पर बसे मानवों की सेवा करना है। माता-पिता का नरक अथवा दुःख से त्राण करने के कारण ही पुत्र को पुत्र कहा जाता है। यदि मैं भी इस पृथिवी का पुत्र हूँ तो मेरा भी कर्त्तव्य है कि मैं भी इस पर बसने वाले प्राणियों के कष्ट को दूर करके उन्हें सुख प्रदान करूं।

मातृभूमि के शत्रु—कुछ ऐसे भी उपद्रवी तत्त्व होते हैं जो इस पृथिवी की शान्ति को भंग करते ही रहते हैं। हत्या, लूट-पाट, आक्रमण करना ही उनका उद्देश्य रहता है। इस प्रकार के कार्यों में व्यक्तिगत स्तर पर दुष्ट मानव, उनके विभिन्न संगठन तथा शेष देश भी सम्मिलित रहते हैं। ऐसे शत्रुओं को वेद में चार रूपों में विभक्त किया गया है—(१) **यो नो द्वेषत्**—जो केवल मन से द्वेष करते रहते हैं। अपने देश की सीमाओं में बद्ध होकर दूसरे देश की उन्नति को सहन नहीं कर सकते। येन-केन प्रकारेण उसके मार्ग में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
बाधाएं खड़ी करते रहते हैं। ऐसे देश अथवा संगठन दूसरे देश के ऊपर साक्षात् आक्रमण नहीं करते अपितु परोक्ष रूप में ही उसकी उन्नति में बाधा उपस्थित करते रहते हैं। अमेरीका यही तो कर रहा है। भारत पर सीधा आक्रमण न करके भी वह निरन्तर इसके मार्ग में बाधा उपस्थित करता रहता है। पोखरण के परमाणु परीक्षण से आहत होकर ही तो वह भारत पर आर्थिक प्रतिबन्ध लगा देता है। अमेरीका सदृश अन्य देश भी इस कार्य में उसके सहयोगी हैं। इनके दुष्प्रयास के परिणामस्वरूप ही तो भारत को अब तक राष्ट्र-संघ की स्थायी सदस्यता नहीं मिल पायी है। दूसरे देश ही नहीं अपितु भारत के अन्दर निवास करने वाले भी अनेक ऐसे व्यक्ति तथा संगठन हैं जो भारत की उन्नति को सहन नहीं करते तथा मन ही मन इसके साथ द्वेष एवम् ईर्ष्या रखते हैं। ऐसे संगठन विविध जाति एवं धर्मों के रूप में अथवा स्वतन्त्र भी होते हैं।

(१) **यः पृतन्यात्**–जो साक्षात् पृतना = सेना लेकर आक्रमण करते हैं वे तो मेरी मातृभूमि के साक्षात् शत्रु हैं ही। भारत पर पहले भी इस प्रकार के विदेशी आक्रमण होते रहे हैं। मुसलमानों के अनगणित आक्रमण इसके प्रमाण हैं। वे भारत की संस्कृति को नष्ट करते रहे, यहाँ की सम्पदा को लूटते रहे तथा यहाँ अपने साम्राज्य का विस्तार करते रहे। आज भी वह प्रवृत्ति जारी है। १९६२ का चीनी आक्रमण तथा १९४७ एवं १९६५ के पाकिस्तानी आक्रमण इसके प्रमाण हैं। आज भी पाकिस्तान आक्रमण की तैयारी में रहता ही है। अपनी शक्ति भी बढ़ा रहा है। चीन आदि देश भी उसके साथ रहते हैं। देश के अन्दर भी इस प्रकार के आक्रमण होते रहते हैं। एक संगठन अपने विद्रोही समाज के संगठन पर आक्रमण करता रहता है। रणवीर सेना तथा दलित सेना के नाम पर गठित संगठनों द्वारा भी इस प्रकार के आक्रमण दूसरे संगठनों पर स्वतन्त्र भारत में होते रहते हैं, यह आश्चर्य का विषय है।

(३) **योऽभिदासान् मनसा**–कुछ देश दूसरे देश पर सीधा आक्रमण न करके मानसिक रूप में उस देश को, वहाँ के निवासियों को अपना दास बना लेना चाहते हैं। ये उन आक्रमणकारियों की अपेक्षा अधिक खतरनाक होते हैं जो कि सेना के द्वारा सीधा आक्रमण करते हैं, क्योंकि ऐसे आक्रमण के विरुद्ध तो समूचा देश एक हो उठता है। उसका प्रतिरोध आपसी भेद-भाव भुला कर भी किया जाता है। विगत पाकिस्तानी तथा चीनी आक्रमणों के समय ऐसा ही किया था। किन्तु जो देश मानसिक रूप से मन से हमें गुलाम बनाना चाहता है उसका प्रतिरोध दुष्कर होता है क्योंकि सामान्य जनता उसकी छिपी चाल नहीं समझती है। ऐसे देश दूसरे देश की शिक्षा, सभ्यता, साहित्य एवं संस्कृति पर कुठाराघात किया करते हैं। वहाँ के धर्म को नष्ट किया करते हैं। ये ऊपरी तौर पर किसी प्रकार का आक्रमण सेना आदि के द्वारा नहीं करते किन्तु नीचे ही नीचे किसी देश की सभ्यता-संस्कृति एवं धर्म को नष्ट करके उसकी जड़ों को खोखला कर देते हैं। अंग्रेजों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ने यही तो किया था। यह कहावत ठीक ही है कि यदि किसी देश को नष्ट करना हो तो उसके साहित्य एवं संस्कृति को नष्ट कर दो। अंग्रेज इस कार्य में सफल हुए। वे मुसलमानों की भांति आक्रान्ता के रूप में यहाँ नहीं आये थे, वे व्यापारी की भांति आये थे किन्तु यहाँ अपने पैर जमाते ही अपना साम्राज्य स्थापित होते ही उन्होंने यहाँ की शिक्षा, सभ्यता, संस्कृति एवं साहित्य पर कुठाराघात किया। इनके स्थान पर अंग्रेजी शिक्षा, साहित्य, सभ्यता एवं संस्कृति का विस्तार किया। उनका प्रयत्न सफल रहा। परिणाम स्वरूप अंग्रेजी राज्य की समाप्ति के पचासों वर्ष पश्चात् भी हम मानसिक रूप से अभी भी उनकी गुलामी को आज तक ढो रहे हैं तथा पता नहीं कब तक ढोते रहेंगे। ऐसे यत्न अभी तक समाप्त नहीं हुए हैं अपितु अहर्निश हो रहे हैं। विदेशी पादरियों के रूप में एक सुसम्बद्ध एवं सशक्त रूप में यही कार्य अभी भी किया जा है। उनको भरपूर विदेशी आर्थिक सहायता दी जा रही है। यह सब कुछ भारतीयों को मन से दास बना लेने का ही तो यत्न है। दूरद्रष्टा वीर सावरकर का कहना 'धर्मान्तरण राष्ट्रान्तरण' गलत नहीं था। नागालैंड आदि इसके प्रमाण हैं।

(४) **यो वधेन**–कुछ संगठन तथा देश दूसरे देश पर न अधिकार करते हैं न उनको मन से दास बनाने का यत्न करते हैं किन्तु नरसंहार करके अपनी प्रवृत्ति का प्रदर्शन ही करते हैं। पुराने जमाने के विदेशी आक्रान्ताओं में अनेक ऐसे थे जिनके द्वारा निरपराध जनता के कत्लेआम की साक्षी आज भी इतिहास की वे पुस्तकें दे रही हैं जो स्कूलों में पढ़ायी जाती हैं। तैमूरलंग, औरंगजेब, नादिरशाह, चंगेजखां आदि आक्रान्ता इसके उदाहरण हैं। आज भी पंजाब-कश्मीर तथा यथाशक्ति अन्य स्थानों पर भी आतंकवादी यही तो कर रहे हैं।

ऐसे समस्त शत्रुओं के प्रति हम क्या व्यवहार करें, वेद कहता है—**'तं नो भूमे रन्धय'**। हे मातृभूमि! इस प्रकार के समस्त शत्रुओं को उसी प्रकार रांध दे जैसे कि पतीली में सब्जी को अग्नि में रांध दिया जाता है। पृथ्वीराज चौहान की भांति १६बार मुहम्मद गौरी जैसे शत्रु को परास्त करके छोड़ दिये जाने की गलती वेदज्ञ राजा नहीं करेगा। कैसी जहालत थी कि शत्रु बार-बार विदेश से आकर तुम पर आक्रमण कर रहा है तथा तुम बार-बार उसे अपनी वीरता के दर्प में छोड़ देते हो जबकि वह एक बार सफल होकर तुम्हें बन्दी बना कर गजनी ले जा कर आँखें निकलवा देता है। यदि तुमने उसे प्रथम बार में ही रौंद दिया होता तो भारत को यह दौर्भाग्य न देखना पड़ता।

हमारा कर्त्तव्य है कि हम इस प्रकार के सभी शत्रुओं को पहचान कर उनके मूलनाश का यत्न करें। पूरा मन्त्र इस प्रकार है—

यो मा द्वेषत् पृथिवी यः पृतन्याद् योऽभिदासान्।
मनसा यो वधेन तं नो भूमे रन्धय पूर्व कृत्वरि।। (अथर्व० १२।१।१४)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बहुदेववाद-हिन्दू धर्म का अभिशाप

(एकेश्वरवाद के सच्चे प्रसारक महर्षि दयानन्द थे)

(डॉ० भवानीलाल भारतीय)

पुरातन वैदिक धर्म एकेश्वरवादी था। उसमें एक ही परमात्मा की पूजा, उपासना तथा आराधना का विधान था। अग्नि, वायु, आदित्य, इन्द्र, मित्र, वरुण, पूषन् आदि विभिन्न नामों से पुकारा जाने वाला परमदेव परमात्मा ही पुराकालीन आर्यों का आराध्य, पूज्य तथा उपास्य था। कालान्तर में जब वेद के अध्ययन-अध्यापन में लोगों की रुचि नहीं रही और पुराण, तन्त्र आदि अनार्ष ग्रन्थों का प्रचलन हुआ तो अनेक देवी देवताओं की कल्पना हुई और लोग अपनी मूर्खता, अविद्या और मिथ्याज्ञान के कारण अनेक देवताओं को पूजने लगे। पौराणिक युग के प्रथम चरण में ब्रह्मा, विष्णु और शिव (अथवा रुद्र) की त्रिमूर्ति कल्पित की गई। विश्व के सर्जक को ब्रह्मा, पालक को विष्णु तथा संहारकर्ता को शिव या रुद्र कहा गया। इन देवों को मनुष्य रूप में कल्पित किया गया और इनके स्त्री, पुत्र, वाहन, पोशाक, निवास आदि भी कल्पित किये गये।

त्रिदेवों के उपासक सम्प्रदायों का गठन हुआ और प्रत्येक की महिमा, माहात्म्य और प्रताप का वर्णन करते हुए पृथक्-पृथक् पुराणों की रचना हुई। ब्रह्मा को महत्त्व देने वाला ब्रह्मपुराण, विष्णु को सर्वोपरि ठहराने वाले विष्णु तथा भागवत और शिव की महिमा का वर्णन करने वाले शिव एवं लिंग पुराण भी साम्प्रदायिक प्रवृत्ति के लोगों ने ही बनाये। कालान्तर में इनमें गणेश, सूर्य तथा देवी का समावेश हुआ और ब्रह्मा को पञ्चदेवों से पृथक् कर दिया गया। गणेश के महत्त्व की स्थापना के लिए गणेश पुराण, सूर्य की प्रतिष्ठा के लिए सौर पुराण (भविष्य पुराण भी सूर्य की महत्ता स्थापित करता है) तथा भगवती देवी को आद्या शक्ति के रूप में प्रतिष्ठापित करने के लिए देवी भागवत तथा देवी पुराण रचे गये। यह ध्यातव्य है कि ये सभी उपपुराण हैं, इनकी गणना महापुराणों में नहीं होती। वैष्णवों और शाक्तों में जब धार्मिक उन्माद प्रबल हुआ तो प्रत्येक ने अपने-अपने पुराण (भागवत तथा देवी भागवत) को महापुराण की संज्ञा देने का आग्रह किया। शाक्तों ने तो यहाँ तक कह दिया है कि जिस पुराण में भगवती कालिका की महत्ता स्थापित की गई है तथा देवी द्वारा अनेक राक्षसों के संहार का वर्णन हुआ है, वही वास्तविक भागवत है। वैष्णव भागवत को बनाने वालों को उन्होंने कलिकाल में उत्पन्न दुरात्मा बताया और कहा कि इन्हीं धूर्त लोगों ने यह भागवत (वैष्णव) बना लिया है। इस प्रकार साम्प्रदायिक देवी देवताओं की स्तुति, प्रशंसा तथा माहात्म्य का वर्णन करने वाले ये अठारह पुराण और अठारह उपपुराण एक-दूसरे की निन्दा, कुत्सा तथा परस्पर नीचा दिखाने की क्षुद्रताओं से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परिपूर्ण हैं।

अवतारवाद तथा पुराणों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। पुराणों में विष्णु के दस मुख्य तथा चौबीस गौण अवतार बताये गये हैं। विष्णु की ही भांति शिव के अवतार भी शिवपुराण में वर्णित हुए हैं। तथा भगवती देवी के अवतारों की भी कल्पना की गई है। दस प्रमुख अवतारों में मीन, कच्छप तथा वराह तो जानवरों (मछली, कछुआ तथा शूकर) के रूप में विष्णु का अवतार होना बताते हैं जबकि नृसिंह आधा पशु और आधा इन्सान है। राम, परशुराम, कृष्ण और बुद्ध मानव रूपधारी अवतार हैं। अन्तिम कल्कि अवतार को तो अभी अवतरित होना ही है। उसकी कथा कल्कि (उप) पुराण में वर्णित हुई है। मनुष्य रूप में जो अवतार हुए उनमें अकेले परशुराम ही ब्राह्मण कुलोत्पन्न (पिता जमदग्नि तथा माता रेणुका) थे। अवशिष्ट तीन—राम, कृष्ण तथा बुद्ध क्षत्रिय कुलोत्पन्न हैं।

एक ही वैष्णवी शक्ति के अवतार होने पर भी इन अवतारों में उत्कर्षापकर्ष दिखाया जाता रहा। आज कोई हिन्दू मत्स्य, कूर्म तथा वराह अवतार की पूजा-उपासना नहीं करता। यों वराह की मूर्तियाँ यत्र तत्र मिलती हैं जिनमें वराह रूपधारी विष्णु अपने दन्त के ऊपर पृथ्वी को ठहराये खड़े दिखाई देते हैं। वराह के अनेक स्तोत्र भी मिलते हैं (हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास बाणभट्ट की आत्मकथा में नायिका भट्टिनी द्वारा वराह की स्तुति का एक सुन्दर श्लोक—'जलौघमग्ना सचराचरा धरा' इत्यादि दिया है) तथापि वराह की पूजा का प्रचलन नहीं है। ब्रह्मा को भी पूजा-उपासना का पात्र नहीं समझा गया। भारत में ब्रह्मा के मन्दिर भी विरल ही हैं। पुष्कर के प्रसिद्ध ब्रह्मा मन्दिर में महर्षि दयानन्द ने कुछ काल तक निवास किया था। मुख्यतः हिन्दुओं के उपास्य देव राम, कृष्ण और शिव ही हैं। वेद और यज्ञ के विरोधी ही नहीं, निन्दक गौतम बुद्ध को यों तो अवतारों में सम्मिलित कर लिया गया किन्तु उनके मन्दिरों की स्थापना का श्रेय तो बिड़ला जी को ही देना चाहिए। जिन्होंने स्वस्थापित लक्ष्मीनारायण मन्दिरों (नई दिल्ली तथा अन्यत्र) में विष्णु की ही भांति बुद्ध के लिए भी देवालय बनाये तथा विधिवत् उनकी पूजा की व्यवस्था की।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक व्याख्यान में गर्वपूर्वक कहा था कि हिन्दू धर्म में बहुदेवोपासना के लिए कोई स्थान नहीं है। यहाँ विभिन्न (सभी) देवी देवताओं की पूजा करते हुए भी उपासक उनमें एक ही पराशक्ति का उन्मेष मानता है और वह आपाततः बहुदेववादी होने पर भी तात्त्विक दृष्ट्या एकदेववादी है। हमें तो उक्त स्वामी जी का उक्त कथन नितान्त हेत्वाभासपूर्ण तथा व्यावहारिक दृष्टि से दोष युक्त ही दिखाई देता है। दार्शनिक दृष्टि से भले ही स्वामी विवेकानन्द हिन्दुओं को एकेश्वरवादी ठहरायें, व्यवहारतः वे बहुदेववादी ही हैं। जब राम, कृष्ण, शिव, शक्ति आदि की पूजा-उपासना का एकान्तिक युग आया तो सम्प्रदाय विशेष की निष्ठा ने जोर मारा। वैष्णवों ने शिव की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

निन्दा की और शैवों ने वैष्णव आस्थाओं का उपहास किया। शक्ति-पूजकों ने तो हद ही कर दी। उन्होंने विष्णु, शिव और ब्रह्मा को भगवती का क्षुद्र किंकर, भृत्य तथा दास करार दिया। एक दूसरे के उपासना स्थलों में जाने का निषेध किया, एक-दूसरे के आराध्य की मूर्ति का दर्शन करने को पाप कर्म ठहराया तथा उसके लिए प्रायश्चित्त का विधान किया। आज भी वल्लभ मतानुयायी (बाल कृष्ण का भक्त) शिवलिंग का दर्शन कर पाप का भागी कहलाता है। साम्प्रदायिक वैमनस्य तथा विरोध का यह भाव मध्यकाल में चरम कोटि तक पहुँच चुका था। इसे दूर करने तथा देवी देवताओं की उपासना में समन्वय भाव लाने का एक प्रयास रामचरित मानस के प्रणेता गोस्वामी तुलसीदास ने अवश्य किया, जिन्होंने वैष्णवों और शैवों को एक दूसरे के समीप लाने की चेष्टा की।

यदि हिन्दू समाज तीन या पांच देवों की उपासना तक ही सीमित रहता, तब भी गनीमत थी। किन्तु यहाँ तो देवमण्डली बढ़ती ही गई। मुख्य देवताओं के अनुचरों और सेवकों को भी देवकोटि में ले लिया गया। राम के भक्त और सेवक हनुमान् करोड़ों लोगों के आराध्य बन गये। बाल्मीकीय रामायण में जिन हनुमान् को वेदत्रयी का ज्ञाता तथा व्याकरण का प्रखर विद्वान् बताया गया है, वहाँ पौराणिक युग में उन्हें पूंछधारी बन्दर के रूप में कल्पित किया गया और तेल, सिन्दूर, सवा मन का रोट और लाल लंगोट उनकी पूजा की सामग्री ठहराई गई। यह तो गनीमत रही कि पुच्छधारी हनुमान् को भी तुलसीदास ने बुद्धिमानों में वरिष्ठ तथा ज्ञान गुणसागर बताया तथा उनके कन्धों को मूंज से बने यज्ञोपवीत से सुशोभित कहा। अन्यथा हनुमान् जैसे मनस्वी पुरुष और किष्किन्धा के राजा सुग्रीव के अमात्य (हनुमान्) की पाशविक कल्पना कर उनकी दुर्गति करने में हमारी उपासक मण्डली ने कोई कसर नहीं छोड़ी थी। इन देवी देवताओं के कल्पित वाहन भी देव संज्ञा को प्राप्त कर पूजा के पात्र बने। विष्णु का वाहन गरुड, शिव का नन्दी, देवी का सिंह, गणेश का मूषक, ब्रह्मा और सरस्वती का हंस, यहाँ तक कि भैरव का वाहन श्वान (कुत्ता) भी हिन्दुओं की देवमण्डली में आ विराजे।

'यादृशी शीतला देवी तादृशो खरवाहनः' की उक्ति परवर्ती पुराणकालीन उपासना- पद्धति में साकार होती दिखाई देती है। देवी का सेवक भैरव पूजा का पात्र बना तो चेचक के रोग की देवी शीतला को भी पूज्य माना गया और वर्ष में एक दिन बासी भोजन द्वारा उसकी पूजा का प्रचलन हुआ। जहाँ गधा, कुत्ता, पशु, पक्षी आदि सभी पूजा के पात्र समझे जायें, वहाँ नदी, पर्वत, वृक्ष और सांप आदि सरीसृप, तृण, लता, गुल्म, वनस्पति, औषधि-सभी जड़ पदार्थ हिन्दुओं की श्रद्धा के पात्र बन गये। सच्चिदानन्दादि लक्षण युक्त परमात्मा देव को विस्मृत कर अब पौराणिक हिन्दू जलाशयों (गंगा, यमुना, पुष्कर, प्रयाग, गंगासागर), वृक्षों (पीपल, बड़ और नीम) जहरीले सांपों तक के आगे नतमस्तक होने लगा। जड़ पूजा ने पूजते-पूजते उनके मनों और मस्तिष्क को भी जड़ बना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दिया। उसकी मनस्विता, चिन्तनशीलता तथा विचार-शक्ति सर्वथा कुण्ठित हो गई। वह रूढ़ियों का ग़ुलाम बन गया।

नई जातियां और समाज ऐसे होते हैं जो अपने घटकों को एकता के सूत्र में पिरोये रखते हैं, जबकि हिन्दू-समाज ऐसा समूह है जो धर्म, आस्था, विश्वास आदि को लेकर शताब्दियों से विभिन्नता तथा विच्छिन्नता का शिकार होता रहा है। हम दूसरे मज़हबों (इस्लाम, ईसाइमत तथा यहूदी) की चाहे जितनी आलोचना करें, हमें यह स्वीकार करना होगा कि वे एकेश्वरवाद को लेकर एक सुन्दर आदर्श उपस्थित कर चुके हैं। इन मज़हबों में कतिपय न्यूनताएं होने पर भी परमात्मा की एक अद्वितीय सत्ता को स्वीकार किया गया है, जबकि वर्तमान हिन्दू धर्म अपने अध्यात्म और दार्शनिक गौरव का दम भरने पर भी बहुदेववाद से छुटकारा नहीं पा सके हैं। हमारे यहाँ जातियों के देवता हैं, कुल और परिवार के देवता हैं, लोक देवता हैं, स्थान (ग्राम, नगर) देवता हैं और देवताओं की इस भयंकर भीड़ को बढ़ाते हुए नये नये देवी देवता तथा अवतारी पुरुषों की जमात बढ़ती ही जाती है।

हम ने भगवदवतारों की तो कल्पना की ही, राम, कृष्ण आदि तथाकथित अवतारों के भी रूप, आकार, चरित्र आदि को लेकर उपासनाजन्य भेद कर डाले। वल्लभ मत में कृष्ण के बाल रूप की प्रतिष्ठा है तो निम्बार्क मतानुयायी राधा वल्लभी सम्प्रदाय के लोग कृष्ण के साथ उनकी आद्या शक्ति राधा का शृंगार भाव से भजन करते हैं। कृष्ण की परिणीता पत्नी रुक्मिणी को कोई पूछता ही नहीं जिसने पाणिग्रहण तथा सप्तपदी के मन्त्रों का उच्चारण कर कृष्ण को अपना पति स्वीकार किया था। पता नहीं राधा कैसे उनके गले पड़ गई।

महाभारत के उस कृष्ण को तो सर्वथा उपेक्षित ही कर दिया गया जो सुदर्शन चक्रधारी है, कूटनीतिज्ञ है, गीता का उपदेशक है तथा धर्म राज्य का संस्थापक है। राधारमण, गोपी जन वल्लभ कृष्ण तो याद रहे, किन्तु युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में अग्रपूजा के पात्र, वेद-विज्ञान तथा वेदांग शास्त्रों के ज्ञाता, अस्त्र शस्त्रों में निपुण पितामह द्वारा सम्मानित यादव वासुदेव को कोई याद भी नहीं करता। मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाने वाले राम का भी यही हश्र हुआ। रामभक्ति में भी दाम्पत्य भाव का समावेश हो गया तथा सीता की सौतों की कल्पना की गई। मधुर भावना वाले इन रामभक्तों ने स्वयं को राम की प्रेयसी के रूप में कल्पित कर रामाश्रयी भक्ति में दूषित सखी भावना का समावेश कर दिया।

वर्णों और जातियों के पृथक् देवी देवता कल्पित किये गये। माहेश्वरी वैश्य महेश (शिव) को आराध्य मानते हैं तो ब्राह्मणों का सामान्य देवता शम्भु है। किन्तु पृथक् गोत्रों वाले ब्राह्मणों ने अपने गोत्र प्रदाता ऋषियों को अतिरिक्त सम्मान दिया। गुर्जर गौड़ ब्राह्मणों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के पूज्य गौतम ऋषि हैं तो दाधीच ब्राह्मणों में महर्षि दधीचि को विशेष सम्मान प्राप्त है। क्षत्रियों में देवी को पूज्य माना गया। शिल्पियों ने विश्वकर्मा को अपना देवता माना तो कायस्थों ने धर्मराज के सचिव चित्रगुप्त को अपना आराध्य बताया। जातियों के पश्चात् पृथक्-पृथक् कुल और परिवार हैं। इनके भी भिन्न-भिन्न देवी देवता हैं। कुल देवता की भांति कुल देवियों में भी भिन्नता है।

इधर शक्तिपूजकों ने नव दुर्गाओं की कल्पना की और निम्न श्लोक बनाया—

प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।

तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम्।

पञ्चमं स्कन्दमाता आदि।

इस प्रकार एक शक्ति ब्रह्मचारिणी है तो दूसरी स्कन्द की माता पार्वती है। जातियों ने अपने अपने आराध्यों के अनुसार भिन्न-भिन्न अभिवादन भी कल्पित किये। राठौड़ क्षत्रिय 'जय चारभुजा की' कह कर अभिवादन करते हैं तो कछवाहों में 'जय गोपीनाथ जी' का प्रचलन है। सामान्य क्षत्रिय 'जयमाता जी' कहता है तो निम्न वर्ग के लोग परस्पर राम-राम कह कर ही सन्तोष करते हैं। मेरे गांव के दो सजातीय व्यक्तियों में से एक 'जय श्रीकृष्ण' कहता है, तो दूसरा 'जयराम जी की' से प्रसन्न होता है। यदि उनकी रुचि के प्रतिकूल अभिवादन कोई करता है तो वे मरने मारने के लिए उतारू हो जाते हैं। विघटन के बीज बोने में हिन्दुओं ने कोई कसर उठा नहीं रखी। जिन परिवारों में कभी कोई स्त्री सती हुई तो वह भी आराध्या देवियों में आ गई। झुंझनू (राजस्थान) में कई वर्ष पूर्व की रानी सती सम्पूर्ण अग्रवाल समाज की पूज्या है। उसके मन्दिर सुदूर आसाम में भी बन गये हैं।

आश्चर्य तो तब होता है जब हम देखते हैं कि नाना देवों में एक देव की सत्ता मानने वाले तथा **'सर्वदेवनमस्कारं केशवं प्रति गच्छति'** का नारा लगाने वाले हिन्दू एक ही देवता के विभिन्न स्थानों पर स्थापित मन्दिरों तथा वहाँ पधराई मूर्तियों में विशिष्टता मानते हैं। यों तो भारत में स्थान-स्थान पर हजारों लाखों शिवलिंग स्थापित हैं, किन्तु भक्तों के लिए तो द्वादश ज्योतिर्लिंगों का ही महत्त्व है। तभी तो उत्तर के केदारनाथ, दक्षिण के रामेश्वर, उज्जैन के महाकाल, नेपाल के पशुपतिनाथ, बिहार के वैद्यनाथ आदि शैव तीर्थों को अधिक पवित्र तथा वन्दनीय माना जाता है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न सामान्य स्थानों पर विराजे ये जड़देवता मानो उपासकों को कोई विशेष फल नहीं दे सकते। अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए तो काशी विश्वनाथ की ही शरण में जाना होगा। कहने को तो महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती को आद्याशक्ति की त्रिविध अभिव्यक्ति माना जाता है, किन्तु इनकी विशिष्ट महिमा या शक्ति तो जम्मू के निकट की वैष्णो देवी में ही मानी गई है जहाँ चट्टानों के तीन अनगढ़ प्रस्तर खण्डों को पूजने के लिए लाखों की संख्या में नर-नारी प्रति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वर्ष आते हैं। यह भेड़ियाधसान नहीं तो क्या है? सर्वव्यापक विष्णु को जब स्थान विशेष का अधिष्ठाता बना दिया तो तिरुपति के भगवान् वेंकटेश्वर ही सर्वोपरि हो गये, अन्य स्थानों पर रखी गई वैष्णवी प्रतिमाओं का अवमूल्यन कर दिया गया।

लोक देवताओं की अवधारणा का पृथक् कारण था। राजस्थान में रामदेव, तेजाजी, गोगा चौहान, पाबू राठौड़ आदि कतिपय वीर पुरुषों ने अपने लोक-हित के कार्यों तथा जनकल्याण के लिए समर्पित जींवन के कारण जनसामान्य में आस्था जागृत की। इन लोक-सेवकों के प्रति आदर और सम्मान दिखाना तो उचित था, किन्तु कालान्तर में अन्ध श्रद्धा के कारण ये लोकदेवता ही कष्टों के निवारक, रोग शोक आदि से त्राण दिलाने वाले बन गये। वीर पुरुषों और परोपकार निष्ठ महानुभावों के प्रति जनसामान्य की श्रद्धा स्वाभाविक है, किन्तु इसका अतिरेक तब हो जाता है जब इन दिवंगत महापुरुषों में अन्धों को दृष्टि देने, कोढ़ दूर करने, पंगुओं को चलने फिरने की शक्ति देने की कल्पना कर ली जाती है और उनके चारित्रिक गुणों को विस्मृत कर दिया जाता है।

लोक देवताओं के गुण, कर्म, नाम आदि का तो कोई अन्त ही नहीं है। प्रत्येक ग्राम या बस्ती के बाहर ऐसे असंख्य चबूतरे तथा उस पर स्थापित किस्म-किस्म की प्रतिमाएं इस बात की साक्षी हैं कि मनुष्य ने अपने पूज्य और आराध्य की रचना या निर्माण स्वकल्पना से ही किया है। इनकी सेवा-पूजा और अनुष्ठानों की रीतियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं। शीतला को बासी भोजन पसन्द है तो दुर्गा और भैरव मांस एवं मदिरा से तृप्त होते हैं। आमेर (जयपुर की पुरानी राजधानी) की शिलादेवी का सवेरे का नाश्ता बकरे की बलि से होता है तो नाथ द्वारा के श्रीनाथ जी मिष्टान्नों और पकवानों से सन्तुष्ट होते हैं। भगवान् शंकर भांग, धतूरा तथा आक के पत्तों से ही गुजर कर लेते हैं, तो गणपति को मोदकों का भोजन प्रिय है। महाराष्ट्र के लोगों को गणेशोत्सवों पर नाज है तो बंगाल में दुर्गा-पूजा की धूम रहती है। पहले केवल गुजरात में ही नवरात्रों के अवसर पर स्त्री पुरुष मिल कर डांडिया नृत्य करते थे, किन्तु धर्म का आवरण रखने वाले इन नृत्यों ने अन्य प्रान्तों के युवाओं को भी अपनी ओर आकृष्ट किया तो अब देश में सर्वत्र नवरात्र की देवी आराधना के नाम पर युवा लड़के लड़कियाँ भड़कीले परिधान पहन कर फिल्मी धुनों पर थिरकते हुए नजर आते हैं। अश्लीलता की सीमा तक जाने वाले तथा पर-स्त्री के अंग स्पर्श की गुदगुदाहट महसूस करने वाले इन नृत्यों का आरम्भ दिखावे की देवीपूजा से किया जाता है, मानो भैरवीचक्र के प्रारम्भ में देवी की पूजा कर इष्ट देवता के प्रति अहसान जताया गया है।

कल ही जब मैं भ्रमणार्थ निकला तो एक ट्रक के ऊपर की पंक्ति मेरी दृष्टिगोचर हुई। इस पर लिखा था—'खाटू वाले श्याम बाबा की जय।' क्या ये 'श्याम' कृष्ण ही हैं? सामान्यतया श्याम कृष्ण का वाचक माना जाता है। फिर एक स्थान विशेष (ग्राम खाटू

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(जिला सीकर) राजस्थान) के श्याम बाबा का क्या महत्त्व और माहात्म्य है। पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि महाभारत का एक पात्र बर्बरीक था। वह युद्ध में मारा गया, किन्तु सम्पूर्ण युद्ध को समाप्ति तक देखने की उसकी लालसा अधूरी ही रह गई। इस पर मुण्ड मात्र रहे बर्बरीक (इसे ही अग्रवाल लोग श्याम बाबा कहते हैं और उसे अपना जातीय देवता मानते हैं) ने भगवान् कृष्ण से युद्ध को समाप्ति पर्यन्त देखने की इच्छा जाहिर की। इस पर कृष्ण ने उसके धड़रहित मुण्ड को एक ऊंचे स्थान पर रख दिया और मृत्यु के पश्चात् भी उसे देखने की शक्ति दे दी। यही श्मश्रु (दाढ़ी मूंछ युक्त) वाला मानव मुण्ड श्याम बाबा कहलाता है जिसका भव्य मन्दिर राजस्थान के खाटू ग्राम में है। देश विदेश के लाखों अग्रवाल अपने इस आराध्य देवता के दर्शनार्थ प्रतिवर्ष यहाँ आते हैं। राम, कृष्ण आदि अवतारी देवता गौण हो गये और खाटू ग्राम में मुण्ड रूप में अवस्थित श्याम बाबा ही एक मात्र पूज्य देव बन गये।

हिन्दुओं के इस बहुदेववाद की कोई सीमा नहीं, कोई इयत्ता नहीं। राम, कृष्ण आदि ऐतिहासिक महापुरुषों को भगवदवतार की प्रतिष्ठा पाये तो कई शताब्दियाँ बीत गईं, आज भी पुरुष विशेष को ईश्वर रूप में प्रतिष्ठित करने का रिवाज जारी है। सिखों के गुरु सामान्य मनुष्य नहीं रहे साक्षात् परमात्मा हो गये। स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरु रामकृष्ण को परमात्मा का आधुनिक अवतार कह कर उसकी षोडशोपचार पूजा चलाई। गुजरात के स्वामी नारायण मत के ग्रन्थों के अध्ययन से यह बात सामने आई कि इस सम्प्रदाय के संस्थापक अयोध्या के एक ब्राह्मण (सहजानन्द) को इस मत के अनुयायी साक्षात् ईश्वर मानते हैं। ऐसी स्थिति में यदि रजनीश और सांई बाबा को परमात्मा मान लिया गया तो आश्चर्य ही क्या? वस्तुतः एकेश्वरवाद का तात्त्विक प्रचारक तथा पुरस्कर्ता तो ऋषि दयानन्द ही था, जिसने तारस्वर से यह घोषणा की—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र तथा सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करना मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

क्या शाखाएं वेद हैं ?

डॉ० सत्यव्रत राजेश, दयानन्द नगरी, ज्वालापुर-(हरिद्वार)

इस बार मेरा विचार था कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं, यह लेख का विषय रखूं। किन्तु वह विषय कुछ लम्बा हो जाता तथा मान्य सम्पादक जी का आदेश था कि लेख का कलेवर विस्तृत न हो तो अच्छा है, है भी ठीक। अनेक विद्वानों के लेख आएंगे तथा उन सब को सम्पादक को स्थान देना होता है। जिसका लेख न छपे उसे ही अच्छा न लगेगा। अतः मैंने 'शाखाएं' वेद नहीं हैं, इस विषय पर लेख लिखना उचित समझा। वेदों के विषय में महर्षि दयानन्द के विचार बहुत सुलझे तथा सत्य हैं। उनसे पूर्व लोग ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद मानते थे तथा शाखाओं को भी। इतना ही नहीं अपने को ज्ञानकाण्ड का प्रतिपादक मानने वाले 'इति श्रुतिः' कह कर उपनिषदों का प्रमाण देते थे तथा कर्मकाण्ड के विद्वान् 'इति श्रुतिः' से प्रायः शतपथ का प्रमाण प्रस्तुत करते थे। मानो उपनिषद् तथा शतपथ भी वेद की कोटि में आते हों। किन्तु महर्षि दयानन्द ने ऋग्, यजुष्, साम तथा अथर्व को ही वेद माना है। शेष वैदिक साहित्य को ब्राह्मण, आरण्यक, शाखाएं, उपनिषद् आदि संज्ञाएं दी हैं।

किन्तु कुछ विद्वान् शाखाओं को भी वेद संहिताएं मानते तथा उनको ऋक् संहिताओं की भांति प्रमाण मानने का आग्रह करते हैं। इससे जहां समाज में भ्रान्ति फैलती है वहां वेदों से भी विरोध आता है तथा उनकी इयत्ता ही समाप्त हो जाती है। क्योंकि विभिन्न समय में विभिन्न शाखाएं बनती रहेंगी तथा समाज उन्हें मान्यता देता रहेगा। फिर वेद इतने हैं यह निर्धारण कैसे होगा ?

इस विषय में प्रथम तो विचारणीय प्रश्न यह है कि शाखा शब्द ही यह सिद्ध करता है कि कोई वृक्ष है जिसकी ये शाखाएं हैं। आज भी गणना के समय यही कहा जाता है कि इतनी शाखा अमुक वेद की हैं। जैसा कि पस्पशाह्निक में महाभाष्यकार पतञ्जलि लिखते हैं—

चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधां भिन्नाः। एकशतमध्वर्युशाखाः।
सहस्रवर्त्मा सामवेदः। एकविंशतिधा बाह्वृचम्। नवधाऽऽथर्वणो वेदः।।

यहां स्पष्ट ही वेद चार ही बतलाए गए हैं। हां, अंग, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् अनेक बतलाए हैं। साथ ही ऋग्वेद की २१ शाखा, यजुर्वेद की १०१ शाखा, सामवेद की १००० शाखा तथा अथर्ववेद की ६ शाखाएं बतलाई हैं।

महर्षि दयानन्द जी की इस विषय में मान्यता भी दर्शनीय है। वे लिखते हैं—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"जितनी शाखाएं हैं वे आश्वलायन आदि ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हैं। जैसे चारों वेदों को परमेश्वरकृत मानते हैं वैसे आश्वलायनी आदि शाखाओं को उस ऋषिकृत मानते हैं। और सब शाखाओं में मन्त्रों की प्रतीक धर के व्याख्या करते हैं। जैसे तैत्तिरीय शाखा में 'इषे त्वोर्जे त्वेति' इत्यादि प्रतीकें धर के व्याख्यान किया है और वेद संहिताओं में किसी की प्रतीक नहीं धरी। इसलिए परमेश्वरकृत चारों वेद मूलवृक्ष और आश्वलायनादि सब शाखा ऋषि-मुनिकृत हैं, परमेश्वरकृत नहीं।

यहां महर्षि ने कारण सहित वेदों से शाखाओं को पृथक् माना है। अन्यत्र भी वेदों से शाखाओं को भिन्न माना गया है। कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं—

१. सायणाचार्य ने वेद के भाष्यों के आदि तथा अन्त में तथा शाखाओं के भाष्य के आदि अन्त में संहिता तथा शाखा में भेद किया है।

२. अष्टाध्यायी ४।३।१०१ के "तेनोक्तम्" सूत्र की व्याख्या में महाभाष्यकार कहते हैं—अर्थ को ध्यान में रखकर वर्णानुपूर्वी को अनित्य बनाने में ही प्रोक्त का प्रयोग होता है। जैसे काठक, कालापक, मौदक तथा पैप्पलाद आदि।

३. नृसिंहपूर्वतापिनी उपनिषद् १।२ में कहा है कि ऋग्, यजुः, साम, अथर्व ये चार वेद, अङ्ग तथा शाखा सहित चार पाद होते हैं। **ऋग्यजुःसामाथर्वाणश्च चत्वारो वेदाः साङ्गाः सशाखाश्च चत्वारः पादा भवन्ति।**

४. बृहज्जाबालोपनिषद् ब्रा० ८, खं० ५ में अतिवाद करते हुए चारों वेदों से शाखा तथा कल्पों को भिन्न बतलाया है। **य एतद् बृहज्जाबालं नित्यमधीते स ऋचोऽधीते स यजूंष्यधीते स सामान्यधीते सोऽथर्वाणमधीते सोऽङ्गिरसमधीते स शाखा अधीते स कल्पानधीते।**

५. भरतनाट्यम् की व्याख्या में अभिनव गुप्ताचार्य लिखते हैं कि नाट्यशास्त्र शब्द से जो यह ग्रन्थ है भरत उसके बनाने वाले हैं प्रवचनकर्ता नहीं। क्योंकि प्रवचन व्याख्यान रूप तथा करण से भिन्न होता है जैसे काठक; कठ से प्रोक्त को कहते हैं। तत्र नाट्यशास्त्र-शब्देन जो यहां ग्रन्थ है वह बनाया है प्रोक्त नहीं। प्रोक्त बनाने से भिन्न, व्याख्यान रूप होता है। जैसे कठ से प्रोक्त (काठक)।

६. वायु पुराण अ० ६१ श्लोक ५९ में कहा है कि एक पुराण पाठान्तर से ऐसे ही भिन्न हो गया जैसे चार वेदों से अनेक शाखाएं बन गईं।

सर्वास्ता हि चतुष्पादाः सर्वाश्चैकार्थवाचकाः।
पाठान्तरे पृथग्भूता वेदशाखा यथा तथा।।

७. वहीं ६१वें श्लोक में कहा है कि प्रजापति परमात्मा के वेद तो नित्य हैं उन्हीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के विकल्प, रहस्यों को समझाने के लिए शाखा बनाई गई हैं।

प्राजापत्या श्रुतिर्नित्या तद्विकल्पास्त्विमे स्मृताः।।

८. ऐतरेयालोचन नामक ग्रन्थ के प्रसिद्ध विद्वान् सत्यव्रत सामश्रमी लिखते हैं—तत्त्व रूप से वेद की शाखा वृक्ष या नदी की शाखा की भांति नहीं है अपितु अध्येताओं के भेद से या सम्प्रदावजन्य अध्ययन विशेष के रूप से ये भिन्न-भिन्न हो गई हैं। **"तत्त्वतो न हि वेदशाखा वृक्षशाखेव नापि नदीशाखेव प्रत्युताध्येतृभेदात् सम्प्रदायभेदजन्याध्ययन-विशेषरूपेव।।"**

यहां विद्वान् महोदय ने स्पष्ट कर दिया है कि वेद की शाखा ऐसी नहीं है जैसे वृक्ष या नदी की शाखा होती है जो उसके अंग हैं प्रत्युत वेद की शाखा तो पढ़ने वालों के भेद से अथवा पृथक् सम्प्रदायों के अध्ययन भिन्नता से बनी हैं। ऐसे में शाखाओं को वेद मानना कैसे उचित माना जा सकता है ?

ये शाखाएं कहीं-कहीं अर्थों के स्पष्टीकरण का प्रयास भी करती हैं। जैसे ऋ० १०। ७१। ६ में "सचिविदं सखायम्" पाद है उसके सचि पद स्पष्टार्थक नहीं है। तैत्तिरीय आरण्यक उसको 'सखिविदं सखायम्' लिखता है। ऐसे ही शाखाएं भी कहीं-कहीं ऐसे ही कार्य करती हैं। यजु० १। १७ में 'भ्रातृव्यस्य वधाय' पाठ है। भ्रातृव्य का अर्थ स्वरभेद से भतीजा तथा शत्रु दोनों होते हैं। काण्व शाखा १। २८ में उसके स्थान पर 'द्विषतो वधाय' पाठ करके उसको स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

यजु० २। १३ के मन्त्रांश 'मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य' को तैत्तिरीय शाखा ने "मनोज्योतिर्जुषतामाज्यम्" १। ५। ३ करके जूति को ज्योति दिखाया गया है। तथा आज्यस्य के स्थान पर आज्यम् बनाकर अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। यह इसलिए किया कि संहिता में परिवर्तन का किसी को अधिकार नहीं है ? वह चाहे वर्ण सम्बन्धी हो या आनुपूर्वी सम्बन्धी। किन्तु बाह्य लेखन पर किसी को आपत्ति नहीं किन्तु वह हो वेद मन्त्रों के अर्थ के अनुसारी।

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द ने जो शाखाओं को वेद-संहिताओं से पृथक् माना है उनकी यह मान्यता सत्य है तथा अन्य मनीषी उससे पूर्णतया सहमत थे तथा हैं। वेदों के पुरुष सूक्त में परमात्मा कहते हैं कि—

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।

यहां भी चार वेदों को ही परमेष्ठी से उत्पन्न माना है, शाखाओं को नहीं। अतः शाखा, वेद नहीं हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेदों का आविर्भाव : महर्षि का वक्तव्य

सुदर्शनदेव आचार्य,
संस्कृत सेवा संस्थान, ७७६/३४ हरिसिंह कालोनी, रोहतक

प्रश्न–वेदों की उत्पत्ति किस से हुई ?

उत्तर–ईश्वर से। इसमें निम्नलिखित प्रमाण हैं–

(क) तस्माद् यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।। यजु० ३१। ७।।

अर्थ–**(तस्मात्)** उस **(यज्ञात्)** उपासना के योग्य **(सर्वहुतः)** सब सामर्थ्य से युक्त परब्रह्म से **(ऋचः)** ऋग्वेद **(सामानि)** सामवेद **(जज्ञिरे)** उत्पन्न हुए **(तस्मात्)** उससे **(छन्दांसि)** अथर्ववेद **(जज्ञिरे)** उत्पन्न **(यजुः)** यजुर्वेद **(तस्मात्)** उससे **(अजायत)** उत्पन्न हुआ।

(ख) यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्। सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्।। स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः।। अथर्व० १०। २३

अर्थ–**(यस्मात्)** जिस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से **(ऋचः)** ऋग्वेद **(अपातक्षन्)** उत्पन्न हुआ **(यस्मात्)** जिससे **(यजुः)** यजुर्वेद **(अपाकषन्)** उत्पन्न हुआ। **(सामानि)** सामवेद तथा **(अथर्वाङ्गिरसः)** अथर्ववेद जिससे उत्पन्न हुआ है और सामवेद उसके लोमों के समान, अथर्ववेद मुख के समान, यजुर्वेद हृदय के समान तथा ऋग्वेद प्राण के समान है, **(ब्रूहि)** बतलाओ **(सः)** वह **(कतमः स्वित्)** कौन-सा **(देवः)** देव है ? इसका उत्तर यह है– **(तम्)** उस **(स्कम्भम्)** सब जगत् का धारण करने वाले परमेश्वर को वेदों का कर्त्ता जानो।

(ग) एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः
सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः।। शत० का० १४। अ० ५।।

महाविद्वान् महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी पण्डिता स्त्री मैत्रेयी को उपदेश करते हैं–हे मैत्रेयि ! जो आकाश आदि से भी बड़ा, सर्वव्यापक परमेश्वर है उसी से ऋग्, यजुः, साम और अथर्व ये चारों वेद उत्पन्न हुए हैं। जैसे–मनुष्य के शरीर से श्वास बाहर आता है। वैसे सृष्टि के प्रारम्भ में ये वेद ईश्वर से प्रकट होते हैं और जैसे श्वास अन्दर को जाता है वैसे ये प्रलय काल में ईश्वर के ज्ञान के अन्दर विद्यमान रहते हैं। इनका नाश कभी नहीं होता।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रश्न–निराकार ईश्वर से शब्द रूप वेद कैसे उत्पन्न हुए ?

उत्तर–(१) परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है। मुख और प्राण आदि साधनों के विना भी ईश्वर में मुख और प्राण आदि के काम करने का अनन्त सामर्थ्य है। वह मुख तथा प्राण आदि के विना भी उनका काम अपने अनन्त सामर्थ्य से कर सकता है। यह दोष हम जीव लोगों में आता है कि मुख आदि के विना तत्सम्बन्धी कार्य हम नहीं कर सकते, क्योंकि हम लोग अल्पशक्तिमान् हैं।

(२) इसमें यह दृष्टान्त है कि मन में मुख आदि अवयव नहीं, फिर भी विचार करते समय उसमें प्रश्न-उत्तर होते रहते हैं, वैसे परमेश्वर में भी मुख आदि साधनों के विना भी शब्द-व्यवहार होता है।

(३) ईश्वर सम्पूर्ण सामर्थ्यवाला है। वह किसी कार्य के करने में किसी की सहायता ग्रहण नहीं करता। क्योंकि वह अपने सामर्थ्य से ही सब कार्य कर सकता है।

(४) जब निराकार ईश्वर सम्पूर्ण जगत् को बना सकता है और उसने नेत्र आदि पदार्थों की अत्यन्त आश्चर्य रूप रचना की है, तो निराकार ईश्वर वेदों की रचना भी कर सकता है।

प्रश्न–जगत् के निर्माण में ईश्वर के विना किसी जीव का सामर्थ्य नहीं, किन्तु जैसे व्याकरण शास्त्र आदि की रचना में मनुष्यों का सामर्थ्य है, वैसे ही वेदों की रचना में मनुष्यों का सामर्थ्य हो सकता है।

उत्तर–(१) ईश्वर ने प्रथम वेद रचे हैं, उनको पढ़ने के पश्चात् ही मनुष्यों में ग्रन्थ रचने का सामर्थ्य उत्पन्न हुआ है। जैसे इस समय में भी किसी शास्त्र को पढ़कर, किसी का आदेश सुनकर और मनुष्यों के व्यवहार को देखकर ही मनुष्यों को ज्ञान होता है।

(२) किसी मनुष्य के बालक को एकान्त में रखें और उसका युक्तिपूर्वक पालन-पोषण करें। उसके साथ भाषण आदि व्यवहार लेशमात्र भी कोई मनुष्य न करे, उसको आजीवन ऐसे ही रखें। ऐसे व्यक्ति को मनुष्यपने का भी ज्ञान नहीं हो सकता।

(३) वन में रहने वाले मनुष्यों को विना उपदेश के यथार्थ ज्ञान नहीं होता, किन्तु उनमें पशुओं जैसी ही प्रवृत्तियां देखने में आती हैं। यदि परमेश्वर वेदों का उपदेश नहीं करता तो सब मनुष्यों की प्रवृत्ति पशुओं जैसी ही रहती। ग्रन्थ रचने की बात तो बहुत दूर की है।

प्रश्न–ईश्वर ने मनुष्यों को स्वाभाविक ज्ञान दिया है, जो सब ग्रन्थों से उत्तम है। उसके विना वेदों के शब्द, अर्थ और सम्बन्ध का ज्ञान भी नहीं हो सकता। जब उस ज्ञान की क्रम से वृद्धि होगी तब वे विद्या-पुस्तकों की रचना कर लेंगे। फिर वेदों की उत्पत्ति ईश्वर से मानने की क्या आवश्यकता है ?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उत्तर–एकान्त में रहने वाले बालक तथा वनवासी लोगों को भी स्वाभाविक ज्ञान ईश्वर ने दिया है। वे उस स्वाभाविक ज्ञान से विद्वान् क्यों नहीं बनते। इससे निश्चित है कि ईश्वर के ज्ञान वेद के विना किसी मनुष्य को यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। जैसे आज हम लोग वेदों के अध्ययन, विद्वानों की शिक्षा और उनके द्वारा बनाए हुए ग्रन्थों के पढ़े विना विद्वान् नहीं होते, वैसे सृष्टि के आरम्भ में परमेश्वर के उपदेश-वेदों के विना मनुष्यों को धर्म आदि पदार्थों का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए केवल स्वाभाविक ज्ञान से किसी मनुष्य का निर्वाह नहीं हो सकता।

सृष्टि के आरम्भ में पढ़ने-पढ़ाने की व्यवस्था नहीं थी, और विद्या का कोई ग्रन्थ भी नहीं था। उस समय ईश्वर ने वेद का उपदेश किया। उसी से मनुष्यों में ग्रन्थ रचना आदि का सामर्थ्य उत्पन्न हुआ।

मनुष्य नैमित्तिक ज्ञान में स्वतन्त्र नहीं है अपितु वह ईश्वर के अधीन है। वह स्वाभाविक ज्ञान मात्र से विद्या की प्राप्ति नहीं कर सकता। इसलिए ईश्वर ने सब मनुष्यों के हित के लिए वेदों की उत्पत्ति की।

मनुष्य का स्वाभाविक ज्ञान एक सापेक्ष साधन है। जैसे मन के संयोग के विना आंख नहीं देख सकती और आत्मा के संयोग के विना मन कुछ नहीं कर सकता। वैसे मनुष्य का स्वाभाविक ज्ञान वेद और विद्वानों की शिक्षा के ग्रहण करने में साधन है। उसे वेदज्ञान तथा विद्वानों की शिक्षा की अपेक्षा है। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का स्वतन्त्र साधन नहीं हो सकता।

प्रश्न–वेदों की उत्पत्ति में ईश्वर का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर–हम लोगों के लिए ईश्वर ने जो वेदों की उत्पत्ति एवं प्रकाश किया है, वह ईश्वर की हम पर अपार कृपा है। ईश्वर में अनन्त विद्याएं हैं। जिनसे वह सब पदार्थों की रचना करता तथा सब को जानता है। विद्या स्वार्थ और परार्थ दोनों के लिए होती है। जैसे वह विद्यावान् के काम में आती है, वैसे वह परोपकार के लिए भी होती है। इसलिए ईश्वर ने जीवों के उपकार के लिए वेद-विद्या का उपदेश किया है।

जैसे माता-पिता अपने सन्तानों के प्रति करुणा एवं कृपा दृष्टि रखते हैं और चाहते हैं कि हमारे पुत्र-पुत्रियां सुख पावें। वैसे ही ईश्वर भी हमारा माता-पिता है। वह मनुष्य आदि सृष्टि पर सदा कृपा दृष्टि रखता है। इसलिए उसने हम लोगों के लिए वेदों का उपदेश किया है।

जैसे ईश्वर ने प्रजा के सुख के लिए कन्द, मूल, फल और घास आदि पदार्थ रचे हैं, वैसे उसने सब सुखों का प्रकाश करने वाली वेद-विद्या का भी उपदेश प्रजा के सुख के लिए किया है। जितने ब्रह्माण्ड में उत्तम पदार्थ हैं, उनकी प्राप्ति से जितना सुख होता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है वह विद्या-प्राप्ति के सुख का हजारवां अंश भी नहीं है। सर्वोत्तम पदार्थ वेद-विद्या है। उसका उपदेश मनुष्यों के कल्याण के लिए परमेश्वर ने किया है।

प्रश्न–वेदों को रचने और वेद-पुस्तक लिखने के लिए ईश्वर ने लेखनी, स्याही और दवात आदि साधन कहां से प्राप्त किए। उस समय कागज आदि पदार्थ तो बने ही नहीं थे ?

उत्तर–जैसे हाथ-पांव आदि अंगों तथा काष्ठ, लोह आदि सामग्री के विना ईश्वर ने जगत् को रचा है, वैसे ही उसने वेदों को भी रचा है, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है।

सृष्टि के प्रारम्भ में वेदों को पुस्तक रूप में लिखकर ईश्वर ने प्रकाशित नहीं किया था; अपितु अग्नि, वायु, आदित्य अंगिरा इन चार ऋषियों के ज्ञान के बीच में प्रकाशित किया था। उन चार ऋषियों के ज्ञान के बीच में वेदों का प्रकाश करके उनसे ब्रह्मा आदि के बीच में वेदों का प्रकाश कराया था।

प्रश्न–ईश्वर ने उन अग्नि आदि चार ऋषियों को ज्ञान दिया होगा, और उन्होंने अपने ज्ञान से वेदों की रचना की होगी ?

उत्तर–ईश्वर ने उन्हें वेद-रूप ज्ञान दिया था और उनके माध्यम से उसे प्रकाशित किया था। वह ज्ञान ईश्वर का ही था। जैसे कोई रुपया आदि किसी मध्यस्थ व्यक्ति के द्वारा किसी को भेजता है, वह वस्तु मध्यस्थ व्यक्ति की नहीं अपितु भेजने वाले की ही होती है। वैसे वह वेद-ज्ञान ईश्वर का ही है।

प्रश्न–जब परमेश्वर न्यायकारी है, तो उसने सब के हृदय में वेद-विद्या का प्रकाश क्यों नहीं किया ?

उत्तर–जो जैसा कर्म करे उसको वैसा ही फल देना न्याय कहलाता है। उन चार ऋषियों का ही ऐसा पूर्व पुण्य था कि जिससे ईश्वर ने उनके हृदय में वेदों का प्रकाश किया। सब मनुष्यों के हृदय में नहीं।

प्रश्न–वे चार ऋषि तो सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुए थे; उनका पूर्व पुण्य कहां से आया ?

उत्तर–सब जीव स्वरूप से अनादि हैं। उनके कर्म तथा यह स्थूल कार्य जगत् प्रवाह से अनादि हैं। इसलिए उन ऋषियों का पूर्व सृष्टि का पुण्य विद्यमान था। उसी से उनके हृदय में ईश्वर ने वेदों का प्रकाश किया।

प्रश्न–क्या वेद के गायत्री आदि छन्दों की रचना भी ईश्वर ने की ?

उत्तर–ईश्वर को सब ज्ञान है। वह सब विद्याओं से युक्त है। इसलिए उसके विषय में ऐसी शंका करना व्यर्थ है ?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रश्न–हम ऐसा इतिहास सुनते हैं कि चार मुखों वाले ब्रह्मा ने वेदों को बनाया?

उत्तर–सत्य प्रमाण से युक्त जो इतिहास है वही सब मनुष्यों के ग्रहण करने के योग्य है। इसके विपरीत इतिहास का ग्रहण किसी को नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार व्यास जी ने चारों वेदों की संहिताओं का संग्रह किया, इत्यादि इतिहास को मिथ्या ही जानना चाहिए। आजकल के बने पुराण तथा तन्त्र ग्रन्थों में लिखे इतिहास को प्रमाण नहीं मानना चाहिए। इनमें असम्भव, कपोल कल्पित मिथ्या इतिहास बहुत लिखा हुआ है और सत्य ग्रन्थ शतपथ ब्राह्मण आदि हैं, उनमें लिखा इतिहास मानने योग्य है। चार मुख वाले ब्रह्मा ने वेदों को बनाया यह इतिहास मिथ्या है।

प्रश्न–वेदों में जो सूक्त और मन्त्रों के ऋषि लिखे जाते हैं, उन्होंने ही उन मन्त्रों को एवं वेदों को रचा है, ऐसा क्यों नहीं माना जाए ?

उत्तर–ऐसा मानना ठीक नहीं। श्वेताश्वतरोपनिषद् में लिखा है–**"यो वै ब्रह्माणं विदधाति यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।"** जिस ईश्वर ने ब्रह्मा को उत्पन्न किया और ब्रह्मा आदि को सृष्टि के प्रारम्भ में अग्नि आदि ऋषियों के द्वारा वेदों का भी उपदेश किया, उस परमेश्वर की शरण को हम लोग प्राप्त होते हैं। इस कथन से स्पष्ट है कि वेदों में लिखे उन ऋषियों से भी पहले जबकि मरीचि आदि ऋषि तथा व्यास आदि मुनियों का जन्म भी नहीं हुआ था तब ब्रह्मा आदि के पास वेद विद्यमान थे। मनु ने भी लिखा है–

अग्निवायुरवभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्।।

अग्नि, वायु, रवि = आदित्य और अंगिरा इन चार ऋषियों से ब्रह्मा जी ने वेदों को पढ़ा था। इससे स्पष्ट है कि वेदों में लिखे मन्त्रों के ऋषियों ने वेदों की रचना नहीं की। वेद उन से भी पहले विद्यमान थे।

प्रश्न–ऋग्वेद आदि संहिताओं के वेद और श्रुति ये दो नाम क्यों हैं ?

उत्तर–(१) वेदों के ये दो नाम अर्थ-भेद से हैं। विद् = जानना, विद् =सत्ता, विद् = लाभ, विद् = विचार करना। इन चार विद् धातुओं से करण और अधिकरण कारक में 'घञ्' प्रत्यय करने से 'वेद' शब्द सिद्ध होता है। विद् + घञ्। विद् + अ। वेद + अ। वेद + सु। वेदः।

जिनके पढ़ने से यथार्थ विद्या का विज्ञान होता है; जिनको पढ़कर विद्वान् होते हैं, जिनसे सब सुखों का लाभ होता है, जिनसे ठीक-ठीक सत्य-असत्य का विचार मनुष्यों को होता है। इसलिए ऋक्-संहिता आदि का 'वेद' नाम है।

(२) सृष्टि के आरम्भ से आज तक तथा ब्रह्मा आदि से लेकर हम लोगों तक जिससे सब सत्य विद्याओं को सुनते आते हैं इससे वेदों का 'श्रुति' नाम पड़ा है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किसी देहधारी ने वेदों के बनाने वाले को कभी नहीं देखा, इसलिए वेद निराकार ईश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं और उनको आज तक सुनते-सुनाते ही आए हैं, इसलिए उन्हें 'श्रुति' कहा जाता है।

(३) जैसे कोई किसी वादित्र = बाजे को बजाता है अथवा काठ की पुतली की चेष्टा कराता है, वैसे ईश्वर ने अग्नि, वायु इत्यादि और अंगिरा इन चार ऋषियों को वेदों के प्रकाश के लिए निमित्त मात्र बनाया था। उनके ज्ञान से वेदों की उत्पत्ति नहीं हुई अपितु ईश्वर के ज्ञान से ही वे उक्त ऋषियों के द्वारा प्रकट हुए हैं।

प्रश्न–वेदों की उत्पत्ति को कितने वर्ष हो गए हैं ?

उत्तर–१९६०८५३०९७ वर्ष वेदों की उत्पत्ति में हुए हैं और यह ९८वां वर्ष चल रहा है। जिसे आज आर्य लोग विक्रम का २०५५ वां वर्ष कहते हैं। इसका विस्तृत वर्णन ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदोत्पत्ति प्रकरण में दिया है, वहां देखे लें।

प्रो० विल्सन तथा मोक्षमूलर आद यूरोपीय विद्वानों का कहना है कि वेद मनुष्यों की रचना है, उनका यह कथन मिथ्या है।

कोई वेदों की उत्पत्ति को २४०० वर्ष कोई २९०० वर्ष कोई ३००० वर्ष तथा कोई ३१०० वर्ष मानते हैं। इनकी यह मान्यता मिथ्या है। उन्होंने आर्य लोगों की प्रतिदिन की दिनचर्या (वर्ष, ऋतु, अयन, मास, पक्ष, दिन, नक्षत्र, मुहूर्त्त, लग्न आदि का हिसाब रखना) तथा संकल्प-पठन की विद्या को यथावत् नहीं जाना। यदि वे इसे जानते तो उनको भ्रम नहीं होता। इससे यह जानना चाहिए कि वेदों की उत्पत्ति परमेश्वर से ही हुई है।

(८वें पृष्ठ का शेष)

स्वामी जी मानते थे कि पतञ्जलि ने जिन योग-विभूतियों का वर्णन किया है वे सब योगी द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं। योगी दूर स्थित अपने योगी भ्राताओं से विचारों का आदान-प्रदान कर सकता है, दूसरे के भावों को जान सकता है, बिना ही बाह्य साधनों के रेलवे के इंजन से भी अधिक तीव्र गति के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान तक गति कर सकता है, पानी पर चल सकता है, धरती के आधार को छोड़कर हवा में रह सकता है, अपनी आत्मा को अपने शरीर से पृथक् कर थोड़ी अवधि के लिए या अनेक वर्षों तक अन्य व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करके रह सकता है। (द्रष्टव्य : वेदवाणी पत्रिका के जनवरी १९८६ के दयानन्द विशेषांक में 'स्वामी दयानन्द और योग' शीर्षक से प्रकाशित कर्नल आल्काट की पुस्तक का डॉ० भवानीलाल भारतीय द्वारा अनूदित अंश)।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में उपासना

डॉ० दिनेशचन्द्र शास्त्री, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' ग्रन्थ की रचना वेद-विषयक विविध पौराणिक मिथ्या मान्यताओं, पाश्चात्य एवं तदनुयायी विद्वानों के मिथ्याभ्रमों के निराकरण हेतु एवं मानव जाति में वैदिक भक्तिवाद की पुनः प्रतिष्ठापना के लिए की थी।

वेदमन्त्रों के आधार पर संस्कृत एवं हिन्दी दोनों भाषाओं में अर्थवाद = अनुवाद और भाव-विस्तार करते हुए अपने इस प्रसिद्ध ग्रन्थ में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना के बहुत से नमूने प्रस्तुत किये हैं। स्वामी जी के अनुसार योग मार्ग ही भक्ति का रास्ता प्रशस्त करता है और वही समाधि, परमपद (मोक्ष) तक पहुंचाता है। वर्तमान काल में आस्तिक-जगत् में उपासना-पद्धति के नाम पर जो पाखण्ड तथा परस्पर विरोधी परम्पराएँ प्रचलित हो रही हैं, वे उपासना-योग की पद्धति के अनुकूल न होने से मिथ्या हैं। देवी-देवताओं की प्रतिमाओं की पूजा, देवी-जागरण, कब्रों की पूजा, उच्च स्वर से ईश्वर का आह्वान करना, घण्टा घड़ियाल बजाकर ईश्वर की उपासना समझना, इत्यादि सभी मान्यताएँ योगभ्रष्ट एवं योग से विमुख लोगों द्वारा चलाई गई हैं। परमेश्वर के मुख्य नाम ओ३म् (प्रणव) का जाप न करके अन्य नामों से परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना अपूर्ण ही है। योगदर्शन के अनुसार परमेश्वर का ध्यान बाह्य न होकर आन्तरिक ही होता है। जब तक इन्द्रियां बाह्यमुखी होती हैं, तब तक परमेश्वर का ध्यान कदापि सम्भव नहीं है। इसलिए ईश्वर की सच्ची भक्ति के लिए योगदर्शन एक अनुपम शास्त्र है। जिस पर आधारित दयानन्द का भक्तिवाद तो विशेष रूप से प्रस्तुत ग्रन्थ के "उपासनाप्रकरण" में ही देखने को मिलता है। जिसमें वेदों के सोलह मन्त्रों का (इन मन्त्रों में दो ऋग्वेद के, छः यजुर्वेद के और आठ अथर्ववेद के हैं।) उपासना-विषय के रूप में वर्णन करके अर्थात्, जैसा वर्णन उपासना का वेदों में मिलता है, वैसा ही यहां संक्षेप में वर्णित करके, योगदर्शन के ५१ सूत्रों को उद्धृत कर उनके आधार पर उपासना की विवेचना और मीमांसा की गयी है। जिसका वर्णन इस प्रकार है—

उपासना की रीति

जब जब मनुष्य लोग ईश्वर की उपासना करना चाहें, तब-तब इच्छा के अनुकूल एकान्त स्थान में बैठकर अपने मन को शुद्ध और आत्मा को स्थिर करें। तथा सब इन्द्रिय और मन को सच्चिदानन्द आदि लक्षण वाले अन्तर्यामी अर्थात् सबमें व्यापक और न्यायकारी परमात्मा की ओर अच्छी प्रकार से लगाकर, सम्यक् चिन्तन करके, उसमें अपने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आत्मा को नियुक्त करें। फिर उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना को बारम्बार करके अपनी आत्मा को भली-भांति से उसमें लगा दें।

उपासना की दूसरी रीति पतञ्जलि मुनि के योगशास्त्र के अनुसार है। चित्त की पांचों वृत्तियों को सब बुराइयों से हटाकर, शुभ गुणों में स्थिर करके, परमेश्वर के समीप में मोक्ष को प्राप्त करने को 'योग' कहते हैं और 'वियोग' उसको कहते हैं कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा से विरुद्ध बुराइयों में फंस के उससे दूर हो जाना। जब वृत्ति बाहर के व्यवहारों से हटाके स्थिर की जाती है, तब जैसे जल के प्रवाह को एक ओर से दृढ़ बांध के रोक देते हैं, तब वह जिस ओर नीचा होता है, उस ओर चलके कहीं स्थिर हो जाता है, इसी प्रकार मन की वृत्ति भी जब बाहर से रुकती है, तब परमेश्वर में स्थिर हो जाती है। चित्त की वृत्ति को रोकने का एक यह भी प्रयोजन है। इन पाँचों वृत्तियों को अभ्यास और वैराग्य से बुरे कामों और दोषों से अलग करके उपासना-योग में प्रवृत्त रखना चाहिए।

समाधियोग का साधन

जो अविद्या आदि पांच क्लेश और अच्छे-बुरे कर्मों की जो-जो वासना, इन सब से जो सदा अलग और बन्धन रहित है, जिससे अधिक वा तुल्य दूसरा पदार्थ कोई नहीं, तथा जो सदा आनन्द ज्ञानस्वरूप सर्वशक्तिमान् है। ऐसे पूर्ण पुरुष ईश्वर में विशेष भक्ति होने से, मन का समाधान होके, मनुष्य समाधि योग को शीघ्र प्राप्त हो जाता है।

भक्ति का प्रकार

ईश्वर के जितने नाम हैं, उनमें से ओंकार सब से उत्तम व मुख्य नाम है। वह पिता-पुत्र के सम्बन्ध के समान है और यह नाम ईश्वर को छोड़ के दूसरे अर्थ का वाची नहीं हो सकता। इसलिए इसी नाम का जप अर्थात् स्मरण और उसी का अर्थ, विचार सदा करना चाहिए कि जिससे उपासक का मन एकाग्रता, प्रसन्नता और ज्ञान को यथावत् प्राप्त होकर स्थिर हो। जिससे उसके हृदय में परमात्मा का प्रकाश और परमेश्वर की प्रेम-भक्ति सदा बढ़ती जाये। उससे उपासकों को उस अन्तर्यामी परमात्मा की प्राप्ति होती है और उनकी अविद्यादि पांच क्लेश तथा रोग रूप नवविघ्नों का नाश हो जाता है।

उपासना-योग के आठ अंग

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये उपासनायोग के आठ अंग कहाते हैं। जिनके अनुष्ठान से अविद्यादि दोषों का क्षय और ज्ञान के प्रकाश की वृद्धि होने से जीव यथावत् मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

उन आठों में से पहला 'यम' है। सो पांच प्रकार का है—अहिंसा, सत्य, अस्तेय,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इन पांचों का ठीक-ठीक अनुष्ठान करने से उपासना का बीज बोया जाता है।

यमों का नियम सहकारी कारण है, जो कि उपासना योग का दूसरा अंग कहाता है, और जिसका साधन करने से उपासक लोगों का अत्यन्त सहाय होता है। सो भी पांच प्रकार का है—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान।

तीसरा अंग उपासना का 'आसन' है। जिसमें सुखपूर्वक शरीर और आत्मा स्थिर हो, उसको 'आसन' कहते हैं। जब आसन दृढ़ होता है, तब उपासना करने में कुछ परिश्रम करना नहीं पड़ता और न सर्दी-गर्मी अधिक बाधा करती है।

उपासना-योग का चौथा अंग 'प्राणायाम' है। वह चार प्रकार है—बाह्य विषय, आभ्यन्तर विषय, स्तम्भवृत्ति और बाह्याभ्यन्तराक्षेपी। इन चारों का अनुष्ठान इसलिए है कि जिससे चित्त निर्मल होकर उपासना में स्थिर रहे।

इस प्रकार प्राणायामपूर्वक उपासना करने से आत्मा के ज्ञान का आवरण अर्थात् ढांपने वाला जो अज्ञान है, वह नित्य प्रति नष्ट होता जाता है, और ज्ञान का प्रकाश धीरे-धीरे होता जाता है।

उपासना-योग का पांचवां अंग 'प्रत्याहार' उसका नाम है कि जब पुरुष अपने मन को जीत लेता है, तब इन्द्रियों का जीतना अपने आप हो जाता है, क्योंकि मन ही इन्द्रियों का चलाने वाला है। तब वह मनुष्य जितेन्द्रिय होके जहां अपने मन को ठहराना व चलाना चाहे, उसी में ठहरा और चला सकता है। फिर उसको ज्ञान हो जाने से सदा सत्य में ही प्रीति हो जाती है, असत्य में कभी नहीं।

जब उपासना योग के पूर्वोक्त पांचों अंग सिद्ध हो जाते हैं, तब उसका छठा अंग 'धारणा' भी यथावत् प्राप्त होती है। 'धारणा' उसको कहते हैं कि मन को चंचलता से छुड़ाके नाभि, हृदय, मस्तक, नासिका और जीभ के अग्रभाग आदि देशों में स्थिर करके ओंकार का जप और उसका अर्थ जो परमेश्वर है, उसका विचार करना।

तथा धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करने और आश्रय लेने के योग्य जो अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है, उसके प्रकाश और आनन्द में, अत्यन्त विचार और प्रेमभक्ति के साथ, इस प्रकार प्रवेश करना कि जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है। उस समय में ईश्वर को छोड़ किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना, किन्तु उसी अन्तर्यामी के स्वरूप और ज्ञान में मग्न हो जाना। इसी का नाम 'ध्यान' है।

इन सात अंगों का फल 'समाधि' है। जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्निरूप हो जाता है, इसी प्रकार परमेश्वर के ज्ञान में प्रकाशमय होके, अपने शरीर को भी भूले हुए के समान जान के, आत्मा को परमेश्वर के प्रकाशस्वरूप आनन्द और ज्ञान से परिपूर्ण

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करने को 'समाधि' कहते हैं।

इस प्रकार दयानन्दीय भक्तिवाद के अनुष्ठान में सब से अधिक सहायता पातञ्जल योग-दर्शन के अष्टांग-योग विधान से और यम-नियमों के अनुसार आचरण से मिलती है।

द्विविध उपासना

उपर्युक्त उपासना दो प्रकार की है—एक सगुण और दूसरी निर्गुण। उनमें से 'सपर्यगाच्छुक्र०' इस मन्त्र के अर्थ अनुसार शुक्र अर्थात् जगत् का रचने वाला, वीर्यवान् तथा शुद्ध, कवि, मनीषी, परिभू और स्वयम्भू इत्यादि गुणों के सहित होने से परमेश्वर सगुण है और अकाय, अव्रण, अस्नाविर इत्यादि गुणों के निषेध होने से वह निर्गुण कहाता है। तथा 'एको देवः' एक देव इत्यादि गुणों के सहित होने से परमेश्वर सगुण और 'निर्गुणश्च' इसके कहने से निर्गुण समझा जाता है। तथा ईश्वर के सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान्, शुद्ध, सनातन, न्यायकारी, दयालु, सबमें व्यापक, सबका आधार मंगलमय, सबकी उत्पत्ति करने वाला और सबका स्वामी इत्यादि सत्यगुणों के ज्ञानपूर्वक उपासना करने को 'सगुणोपासना' कहते हैं। और वह परमेश्वर कभी जन्म नहीं लेता, निराकार अर्थात् आकार वाला कभी नहीं होता, अकाय अर्थात् शरीर कभी धारण नहीं करता, अव्रण अर्थात् जिसमें छिद्र कभी नहीं होता, जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध वाला कभी नहीं होता, जिसमें दो-तीन आदि संख्या की गणना नहीं बन सकती, जो लम्बा-चौड़ा और हल्का-भारी कभी नहीं होता इत्यादि गुणों के निवारणपूर्वक उसका स्मरण करने को निर्गुण उपासना कहते हैं। इस प्रकार की उपासना से ही जीव मुक्ति को प्राप्त करता है। इस प्रकार महर्षि दयानन्द ने प्रस्तुत ग्रन्थ में वेदों और योगदर्शन के अनुसार उपासना का विस्तृत विवेचन किया है।

इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, याचना और समर्पण का वर्णन भी मिलता है। जिनमें 'यो भूतं च' इत्यादि अथर्ववेद के मन्त्रों से स्तुति, यजुर्वेद १९। ९, २। १०, ३२। १४ आदि मन्त्रों से प्रार्थना विषय का उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार से 'वाजश्च मे' इत्यादि शुक्ल-यजुर्वेद के १८वें अध्याय में वर्णित मन्त्रों का, जो कि ईश्वर के अर्थ सर्वस्व समर्पण करने के ही विधान में हैं, यहां किञ्चित् दिङ्मात्र वर्णन किया गया है। जिनमें कि सबसे उत्तम मोक्ष सुख से लेके अन्न पर्यन्त सब पदार्थों की याचना केवल ईश्वर ही से की गयी है।

इससे यह सिद्ध होता है कि जीवात्मा का अनन्यभाव से ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण ही दयानन्द का उपासनावाद (भक्तिवाद) है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेद-महिमा महान् है

—स्व० प्रकाशचन्द्र कविरत्न

सर्वस्व आर्यों का सर्वगुण निधान है।
वर वन्दनीय वेद की महिमा महान है।।

है ज्ञान, कर्म, भक्ति का उत्कृष्ट समन्वय।
रहता है सर्वकाल में, हो सृष्टि या प्रलय।
निःश्रेयसाभ्युदय का है साधन असंशय।
फल चार का दाता है यहाँ वेद चतुष्टय।।

यह तर्क युक्तिपूर्ण विज्ञानानुकूल है।
सब काल सभी को ये सौख्य शान्तिमूल है।
किञ्चित् न पक्षपात है सब के लिए समान है।
रवि ज्योति ज्यों सब को समान करता प्रदान है।।

साहित्य सर्वमान्य वेद का पुनीत है।
किस्से न कहानी न गड़रिये का गीत है।
हीरा है सच्चा वो, तू कांच समझा है जिसे।
रे ! देख वेद को तू वेद की ही दृष्टि से।।

मन दीपों में कहीं जो चमकते हैं दिव्य कण।
ज्योतित उन्हें है कर रही ये वेद-रवि किरण।
मत पन्थ अन्य जितने भी प्रचलित हैं ये नूतन।
पर वेद सर्वश्रेष्ठ सभी से है पुरातन।
प्रत्यय यहां सृष्टि का संवत् प्रमाण है।
वर वन्दनीय वेद की महिमा महान है।।

आर्यों ने वेद के लिए बलिदान किये हैं।
हंसते हुए अति तीव्र गरल पान किये हैं।
फांसी पै चढ़ गये प्रचण्ड अग्नि में जले।
कुचले गये वे हाथियों के पांव के तले।।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लोहे के गर्म चिमटों से तन खाल खिंचाई।
जिह्वा कटाई, आँख सलाखों से फुड़वाई।
भालों, कृपाणों, बाणों से छिदवाये अंग अंग।
जीवन के अन्तक्षण यही मन में रही उमंग।।

फिर जनम लेंगे वेदों का उद्धार करेंगे।
अभिशाप, पाप, ताप सकल जग के हरेंगे।।

हम आर्यों को, वेद ही प्राणों का प्राण है।
वर वन्दनीय वेद की महिमा महान है।।

वेदों को मिटा दे ये भला किस की ताव है।
है ज्ञान यह अक्षय न कोई यह किताब है।
पानी में वेद ज्ञान कभी गल नहीं सकता।
यह वेद आग में कभी जल नहीं सकता।।

वेदों के ग्रन्थ हा ! विधर्मियों ने जलाये।
हम्माम अपने गर्म कई मास कराये।
पर मूढ़ पक्षपातियों ने ये कभी न जाना।
मानव धर्म नष्ट करना है, वेदों का जलाना।।

वेदों की ऋचा, वृक्षों पै, वृक्षों के पत्तों पर।
फूलों पै फलों पर वा चोटी पर जड़ों पर।
मानव समाज, पशु व पक्षियों के गात पर।
सागर तरंग, सरिता तटों जल-प्रपात पर।।

पर्वत व पर्वतों के गगन चुम्बी शिखर पर।
ब्रह्माण्ड के कण कण पै भी हैं वेद के अक्षर।
वह काल मिटाये हैं जिसने लोक बृहत्तर है।
अक्षर अशुद्ध को ज्यों मिटा देता है रबर।।

वेदों को मिटा सकता न वो काल भयंकर।
अंकित है वेद की ऋचा उसके भी भाल पर।।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हां अमर ईश का ये अमर वेद ज्ञान है।
वर वन्दनीय वेद की महिमा महान है।।

हे वेद की शिक्षा जियो औरों को जीने दो।
सुख शान्ति का प्याला पियो औरों को पीने दो।
है ओत प्रोत सारे ही ब्रह्माण्ड में ईश्वर।
उसके हैं सब पदार्थ ये न कभी भूल नर।।

हां त्याग भाव से सदा इनका प्रयोग कर।
लालच के वशीभूत हो परधन कभी न हर।
मुख से भला कहो, भला देखो, भला सुनो।
हां ! साध्य भले के लिए साधन भले चुनो।।

सब के विचार एक हों, आचार एक हों।
होवे न परस्पर घृणा, व्यवहार नेक हों।
जीवन में ओत प्रोत ये वैदिक विचार हों।
निश्चय मनुष्यता का चतुर्दिक् प्रसार हो।।

प्राणी समस्त विश्व के होंगे सुखी अभय।
बोलेंगे सभी प्रेम से वैदिक धर्म की जय।।

शिवं, सत्यं, सुन्दरम् 'प्रकाश' कवि का गान है।
वर वन्दनीय वेद की महिमा महान है।।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वैदिक मान्यताएँ और महर्षि दयानन्द

—आचार्य राजवीर शास्त्री

वेदों का महत्त्व

ऋषियों के ग्रन्थों को न पढ़ने से और अनार्ष ज्ञान का प्रचलन होने से सब से बड़ी हानि यह हुई कि वेदों का गौरव लोग भूल गये थे। महर्षि दयानन्द के आगमन से पूर्व यही प्रसिद्ध हो गया था—

त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भाण्ड-धूर्त्त-निशाचराः।।

ऐसी विषम परिस्थितियों में महर्षि ने यह घोषणा की—**'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।'** इस घोषणा को सुनकर विदेशी पादरी तथा मुल्ला अपनी-अपनी बाईबिल व कुरान पोथियों को बगल में दबाकर वेदभानु के उदय होने से घोरान्धकार के जन्मे चोर व उल्लू के सदृश इधर-उधर छिपने लगे और ऋषि ने शास्त्रार्थ-समर का आह्वान करके जब सब को ललकारा कि सत्य ज्ञान की परख तर्क व युक्ति के बल से करके दिखाओ—**"यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मो वेद नेतरः।"** अर्थात् जो तर्क की कसौटी पर खरा उतरे वही वेद है, दूसरा नहीं।

ऋषियों की सर्वसम्मत मान्यता—वेद के विषय में वैशेषिकदर्शन के रचयिता महर्षि कणाद[1] मुनि ने लिखा है—वेद ईश्वरप्रोक्त है वेद में सत्यविद्याएं और पक्षपातरहित धर्म का ही प्रतिपादन किया गया है, इसलिए वह परम प्रमाण है। न्यायदर्शन के रचयिता गौतम[2] मुनि ने वेद के विषय में लिखा है—सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर जितने भी ब्रह्मादि आप्त पुरुष हुए हैं वे सब वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानते रहे हैं। आप्त पुरुषों का प्रमाण अवश्य मानने योग्य होता है क्योंकि वे धर्मात्मा छल-कपटादि दोषों से रहित, विद्वान् तथा महायोगी थे। अतः उनकी बात उसी प्रकार मानने योग्य है जैसे आयुर्वेद में कही औषधियों के सेवन से रोगनिवृत्ति होने से सुख प्राप्त होता है। और योगदर्शन के रचयिता महर्षि पतञ्जलि[3] ने लिखा है—वेदों का ज्ञान सत्य तथा सार्वभौम है। क्योंकि यह ज्ञान सृष्टि के प्रारम्भ में परम गुरु परमेश्र के द्वारा प्रदत्त है। सांख्यदर्शन ने प्रणेता महर्षि कपिल[4] ने लिखा है—परमात्मा की जो स्वाभाविक विद्याशक्ति है उससे वेदों का आविर्भाव होने से वेदों की प्रामाणिकता है। तथा वेदान्त शास्त्र के प्रणेता महर्षि व्यास[5] मुनि ने वेद ज्ञान के विषय

१. तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्।। वैशेषिक।
२. मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यम्।। न्याय०।
३. स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।। योग०।
४. निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्।। सांख्य०।
५. शास्त्रयोनित्वात्।। वेदान्त०।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में लिखा है—वेद का ज्ञान नित्य तथा सत्य है क्योंकि इसका कारण ब्रह्म ही है। और वेद-ज्ञान प्रदीप की भांति समस्त विद्याओं का प्रकाशक है। इस सूत्र की व्याख्या में आचार्य शंकर को भी यह स्पष्ट करना पड़ा कि वेदों का ज्ञान सूर्य के समान सब सत्य विद्याओं का प्रकाशक है और वेदों का रचयिता सर्वज्ञ परमेश्वर ही है उससे भिन्न कोई जीव नहीं है।

महर्षि मनु ने वेदों के विषय में लिखा है—

देव-पितृ-मनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।

अर्थात् वेद का ज्ञान देवों, पितरों तथा मनुष्यों के लिए ज्ञान का चक्षु है अर्थात् जैसे आंखों से देखकर ही मनुष्य मार्ग पर पत्थरों, कांटों व गड्ढों से बचकर निर्विघ्न पथ पर चलकर अपने लक्ष्य तक पहुंच जाता है, वैसे ही देव = विद्वान् पितृ = पालक व रक्षक पितर जन तथा मननशील मनुष्य मार्ग की बाधाओं से बचकर निर्विघ्न चलता रहता है। और अन्धकार में भटकता फिरता हुआ मनुष्य ठोकरें खाता हुआ दुःखी रहता है किन्तु प्रकाश में मार्गदर्शन पाकर सुखी हो जाता है, ऐसे ही परमात्मा के निर्भ्रान्त वेद के प्रकाश को पाकर मनुष्य विविध भ्रान्तियों व संशयों से बचकर सुखी हो जाता है।

महर्षि दयानन्द की देन

१. प्रत्येक महापुरुष के जीवन में कुछ ऐसी विशेषताएं होती हैं कि जो दूसरों से विलक्षण होती हैं। यद्यपि ऋषि दयानन्द की देनों का परिगणन करना सम्भव नहीं, फिर भी ऋषि दयानन्द को इतिहास में वेदों वाले के नाम से विश्व सदैव स्मरण करता रहेगा। महर्षि के नाम से प्रचलित संस्थाओं, गुरुकुलों व विद्यालयों में भी विशेष रूप से वेदों के अध्ययन अध्यापन पर विशेष बल दिया जाता रहा है। वेद ही ईश्वरीय ज्ञान क्यों ? इस विषय में आर्यजनों में विशेष चर्चाएं होती रहती हैं। आर्य विद्वान् इस विषय में अनेक ग्रन्थ भी लिखते रहे हैं। यथार्थ में वेद ही वह भानु है, जिसके उदय होने पर समस्त मिथ्या पन्थ, पाखण्ड तथा अवैदिक विचारधाराएं स्वतः ही छिन्न-भिन्न हो जाती हैं। ऋषि दयानन्द ने वेदों की पुस्तकों को परम प्रमाण मानकर ही विश्व के धर्माचार्यों को चैलेंज किया था। वेदान्तदर्शन में कहा है—**तत्तु समन्वयात्।**

अर्थात् इस सृष्टि का रचयिता परमात्मा है इसलिए परमात्मा का भी वही ज्ञान का पुस्तक सत्य हो सकता है जिसमें सृष्टि के साथ समन्वय मिलता है। कुरान, बाईबिल आदि ग्रन्थ इस कसौटी पर खरे नहीं उतरते।

२. ऋषि दयानन्द के आगमन से पूर्व वेद का ज्ञान कर्मकाण्ड तक ही सीमित हो गया था। और कर्मकाण्ड भी अनेक ऐसी गलत मान्यताओं से घिर गया था, जो कि वेद विरुद्ध थीं। ऋषि ने आकर यह घोषणा की—कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और इसमें सब व्यावहारिक और पारमार्थिक विद्याएं हैं। यज्ञों में तथा देवी मन्दिरों में होने वाली हिंसाएं वैदिक सद्धर्म के प्रचार से बन्द होने लग गई हैं।

३. ऋषि ने हमें बताया कि विश्व में समस्त ज्ञान-विज्ञान वेद से ही फैला है। वेद में शिक्षा, समाज, गृहस्थ, राजनीति, आयुर्वेद, भौतिक ज्ञान-विज्ञान, गणित विद्या, ज्योतिष आदि हैं। व्यक्ति, राष्ट्र तथा समस्त विश्व की उन्नति के लिए जो भी ज्ञान-विज्ञान है, सभी वेदों में विद्यमान हैं। ऋषि ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में इसका दिग्दर्शन भी कराया है।

४. ऋषि ने यज्ञ की विशुद्ध पद्धति का प्रचलन किया। ऋषि के आगमन से पूर्व यज्ञ के विषय में बड़ी भ्रान्तियां थीं। यज्ञों के नाम पर बहुत अधिक मिथ्या आडम्बर थे जो कि सामान्य जन कर ही नहीं सकते थे। यज्ञ स्वास्थ्य के लिए अतीव आवश्यक है, और यह एक दैनिक कर्त्तव्य है। प्रत्येक मनुष्य को यज्ञ का करना उसी तरह आवश्यक है जैसे प्रतिदिन भोजन करना। सुखी बनने के लिए यज्ञ करना परमावश्यक है। ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और बलिवैश्वदेवयज्ञ ये पांच दैनिक यज्ञ हैं। जो कि प्रत्येक गृहस्थ को प्रतिदिन करने चाहिये।

५. वेदों के विषय में भी अनेक भ्रान्तियां प्रचलित हो गई थीं। वेदों के अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थों व अनेक शाखाओं को भी वेद माना जाने लगा था। वेद तथा अन्य ग्रन्थों का विश्लेषण करके समझाया कि वेद क्या हैं ? वेद मूल चार संहिताओं का ही नाम है।

६. स्वर्ग-नरक की मिथ्या कल्पनाओं का ऋषि ने निराकरण किया। जहाँ पर जीवों को मरणोत्तर अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार जाना पड़ता है। स्वर्ग में देवता रहते हैं जिनका राजा इन्द्र है। यज्ञों के अवसर पर आह्वान करने पर वे अपने अपने वाहनों में बैठकर आते जाते हैं। ऋषि ने आकर स्वर्ग-नरक का यथार्थ स्वरूप समझाया और वेद के आधार पर वेदों में पठित स्वर्ग-नरक शब्दों की शास्त्रीय विवेचना भी की।

७. वेद पढ़ने का अधिकार मानवमात्र को दिलवाया—महर्षि के आगमन से पूर्व **"स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्"** ऐसे वाक्यों के आधार पर वेद-विद्या पढ़ने पर भी पाबन्दियाँ लगा रखी थीं। महर्षि ने आकर बताया कि हम सब एक परमेश्वर की सन्तान हैं। इसलिए जैसे परमेश्वर प्रदत्त वायु, जल, भूमि आदि पर सब का समान अधिकार है, वैसे ही परमेश्वर की वेदविद्या पर सब को पढ़ने का अधिकार है।

८. वेदार्थ करने की प्राचीन शास्त्रीय पद्धति का प्रचलन किया। जिसके आधार पर मन्त्रों का प्रकरणानुसार सत्यार्थ का प्रकाश होता है। और वेदार्थ से होने वाली समस्त भ्रान्तियों का उन्मूलन हो जाता है। जैसे वेद में इतिहास और वेद में विभिन्न कल्पित शरीरधारी देवी देवताओं की कल्पना। वेद के समस्त पद यौगिक होते हैं और ये पद योग-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धातु-प्रत्यय के अनुसार प्रकरणानुसार अर्थ का बोध कराते हैं।

९. मन्त्रों के देवता मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय होते हैं। ऋषि के आगमन से पूर्व इस बात को बिल्कुल ही भूल गये थे। जिस भूल के कारण पौराणिक सायणाचार्य जैसे विद्वान् अर्थ का अनर्थ कर गये। और ऋषि दयानन्द को यह लिखना पड़ा कि सायणादि के भाष्य मिथ्या हैं। देवता को स्पष्ट करने से पूर्व-मन्त्र की संगति यथार्थ लगती है और मन्त्र से भिन्न कल्पित कथा-आख्यानों का प्रत्याख्यान हो जाता है।

१०. महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य की यह भी अपूर्व देन है कि महर्षि ने वेद की काव्यमयी भाषा को समझकर उपमालंकार, श्लेषालंकार आदि की व्याख्या के द्वारा वेदमन्त्रों की व्यावहारिक व पारमार्थिक सरल व्याख्या हमारे सामने रखी और उससे "वेद गडरियों के गीत हैं" ऐसी विदेशी व भारतीय विद्वानों की भ्रान्तियों का स्वतः ही निराकरण हो जाता है।

वेदार्थ जानने के अधिकारी कौन हैं

वेद परमात्मा की पवित्र वाणी है और वह सार्वभौम, सार्वकालीन तथा मानव मात्र के लिए है। साक्षात् द्रष्टा ऋषियों की बात छोड़िये कि उन्होंने वेदमन्त्रों तथा उनके अर्थों का साक्षात्कार किया। सामान्य व्यक्ति तो वेद को जानने के लिए ऋषि प्रणीत वेद वेदांगों को पढ़कर ही वेदज्ञ बन सकते हैं अन्यथा नहीं। उनको निम्नलिखित उपाय अपनाने आवश्यक हैं।

(१) **व्याकरणादि वेदांगों का अध्ययन**—वेद के समस्त पद यौगिक हैं और धातु प्रत्यय के योग से प्रकरणानुसार अर्थों के बोधक होते हैं। और यह यौगिक ज्ञान बिना व्याकरण के सम्भव नहीं है। इसलिए कहा गया है—

रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्। प्रधानं च षडङ्गेषु व्याकरणम्। प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति। ब्राह्मणस्य निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च। (महर्षि पतञ्जलि)

अर्थात् वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण पढ़ना चाहिये। छः अंगों में व्याकरण मुख्य है। मुख्य में किया गया यत्न अवश्य फलप्रद होता है। ब्राह्मण=ब्रह्म वेत्ता बनने के लिए यह परमावश्यक होता है—छः अंगों सहित वेदों को पढ़ना और पढ़ाना।

(२) **निरुक्त व ब्राह्मण ग्रन्थों का अनुशीलन**—यद्यपि निरुक्त भी वेदांगों के अन्तर्गत ही है। पुनरपि इसका कथन इसलिए आवश्यक है कि निरुक्त शास्त्र वेदार्थ दीपक है। और ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों के व्याख्या ग्रन्थ हैं। और निरुक्त से तो व्याकरण की सम्पूर्णता ही होती है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(३) **छः शास्त्रों का सम्यक् अनुशीलन**–ऋषि दयानन्द की अनुकम्पा से छः शास्त्रों का वेदार्थ में महत्त्व पता लगा है। अन्यथा मध्यकालीन वेद-भाष्यकारों ने इनकी सर्वथा उपेक्षा ही की थी। और उसी का परिणाम है आचार्य शंकर भी अविद्याग्रस्त रहकर 'अविद्या' को ही नहीं समझ सके।

(४) **योगसाधक तथा तपस्वी बनना**–केवल शब्दार्थ बोध से और शास्त्रीय ज्ञान के वल से वेद के सत्यार्थ का बोध करना सम्भव नहीं है। इसलिए कहा है–

न ह्येषु प्रत्यक्षमस्त्यनृषेरतपसो वा।।

इस निरुक्त वचन की व्याख्या में महर्षि दयानन्द लिखते हैं–"वेदों के व्याख्यान करने के विषय में ऐसा समझना चाहिये कि जब तक सत्य प्रमाण, सुतर्क, वेदों के शब्दों पर पूर्वापर प्रकरणों, व्याकरणादि वेदाङ्गों, शतपथादि ब्राह्मणों, पूर्वमीमांसादि शास्त्रों और शाखान्तरों का यथावत् बोध न हो और परमेश्वर का अनुग्रह, उत्तम विद्वानों की शिक्षा, उनके संग से पक्षपात छोड़ के-आत्मा की शुद्धि न हो तथा महर्षि लोगों के किये व्याख्यानों को न देखें, तब तक वेदों के अर्थ का यथावत् प्रकाश मनुष्य के हृदय में नहीं होता।" (ऋ० भा० भू० वेदविषय)

इससे स्पष्ट है कि शास्त्रों के ज्ञान के अतिरिक्त वेदार्थ समझने के लिए ऋषित्व बुद्धि तथा तपस्वी भी होना चाहिये। जो मलीनान्तःकरण, पक्षपातादि दोषों से तथा काम क्रोधादि व्यसनों के कारण पवित्र मन वाले नहीं हैं, वे वेद के पवित्र मन्त्रों के अन्तर्निहित अर्थों को जानने में कदापि समर्थ नहीं हो सकते। ऋषि दयानन्द ऋ० भा० भू० के पठन-पाठन विषय में लिखते हैं–

"मनुष्य लोग वेदार्थ को जानने के लिए अर्थ योजना सहित व्याकरण-अष्टाध्यायी, धातुपाठ, उणादिकोष, गणपाठ और महाभाष्य, शिक्षा, कल्प, निघण्टु, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छः वेदों के अङ्ग, मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त ये छः शास्त्र जो वेदों के उपाङ्ग अर्थात् जिनसे वेदार्थ ठीक-ठीक जाना जाता है तथा ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ये चार ब्राह्मण, इन सब ग्रन्थों को क्रम से पढ़ के अथवा जिन्होंने इन सम्पूर्ण ग्रन्थों को पढ़के जो सत्य-सत्य वेद व्याख्यान किये हों, उनको देख के वेद का अर्थ यथावत् जान लेवें।"

इससे स्पष्ट होता है वेदार्थ जानने के योग्य बनने के लिए ६ वेदांग, ६ उपाङ्ग, ६ शास्त्र तथा ४ ब्राह्मण ग्रन्थों का पढ़ना अत्यावश्यक है। जो व्यक्ति इन ऋषि ग्रन्थों का अनुशीलन न करके सीधे ही वेदार्थ समझने का साहस करते हैं वे वेदार्थ के पथ से भ्रष्ट ही समझने चाहिये।

इस शास्त्रीय विद्या के अतिरिक्त वेदभाष्य करने वाले को योगी भी बनना आवश्यक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है। ऋषिवर के जीवन में ऐसी घटना सुनी जाती है कि महर्षि पण्डितों से वेदभाष्य लिखवाते जाते थे और मध्य मध्य में एकान्त में जाकर समाधिष्ठ होकर ईश्वर के सान्निध्य से वेदार्थ को स्पष्ट भी करते रहते थे। इसलिए शास्त्रों का विद्वान् तथा योगी दोनों ही वेदभाष्य करने वाले की योग्यताएँ परमावश्यक हैं।

वैदिक-पद आख्यातज हैं

वेदों के पद आख्यातज होते हैं, रूढ़ नहीं। आख्यातज का अभिप्राय है प्रकृति-प्रत्यय के योग से जो अर्थ स्पष्ट होता है। और रूढ़ का अर्थ है जो पद लोक में व्यक्ति विशेष अथवा स्थानविशेष के लिए प्रसिद्ध हो गए हैं। उनमें प्रकृति-प्रत्यय के अर्थ की कोई संगति प्रायः नहीं होती। वेदों का आविर्भाव सृष्टि के आदि में हुआ। वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं, अतः उनमें लौकिक पदार्थों, व्यक्तियों तथा स्थानों का वर्णन हो भी नहीं सकता।

महर्षि यास्क निरुक्त में वैदिक-पदों को आख्यातज मानते हुए लिखते हैं—**तत्र नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च।** (निरु० १। १२) अर्थात् वैदिक पद आख्यातज होते हैं, यह सभी निरुक्तकार तथा महर्षि शाकटायन मानते हैं। यास्काचार्य ने इस पक्ष से विरुद्ध गार्ग्यादि के मत का अच्छी प्रकार खण्डन किया है। वेदार्थ-ज्ञान के लिए निरुक्त का अध्ययन अत्यावश्यक है। और निरुक्तकार की इस मान्यता को सभी वेदभाष्यकारों को मानना चाहिए। बृहद्देवताकार ने भी **'न हि नामान्यविज्ञाय मन्त्रः शक्यो हि वेदितुम्'।।** (१। ८०) यह कहकर यास्क के मत को स्वीकार किया है।

महर्षि दयानन्द ने अपने वेद-भाष्य में इस मान्यता का पूर्णतः पालन किया है। किन्तु सायणाचार्यादि भाष्यकार इस मान्यता को छोड़ने से वेदों का मिथ्या अर्थ कर गए हैं। उन्होंने इस प्राचीन शैली को त्यागकर अनित्य पदार्थों, व्यक्तियों तथा स्थानों का वर्णन वेदार्थ में दिखाया है, जिससे वेदों के सम्बन्ध में यह मिथ्या धारणा प्रसिद्ध हुई कि वेदों में अनित्य इतिहास है। किन्तु ईश्वर-प्रोक्त शाश्वत ज्ञान वेदों में अर्वाचीन व्यक्ति विशेषादि का वर्णन कैसे सम्भव है ? गंगा, यमुनादि लोक-प्रसिद्ध नदियों का वर्णन वेदों में जो मानते हैं, उन्हें मनु के इस श्लोक पर ध्यान देना चाहिए-

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे।। **(मनु० १। २१)**

अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में सांसारिक वस्तुओं, स्थानों अथवा व्यक्तियों के नाम वेद के शब्दों को लेकर ही रखे गए। अतः वेदों में उनका इतिहास नहीं हो सकता।

कुछ विद्वान् इस 'आख्यातज' मान्यता का भी दुरुपयोग करते देखे गए हैं। इस प्रक्रिया का आश्रय करके स्वाभीष्ट वेदार्थ करने का दुस्साहस भी किया करते हैं। किन्तु उन्हें सदा यह स्मरण रखना चाहिए कि यह ठीक है, मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय देवता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इन्द्रादि के भी अनेक अर्थ होते हैं, और धातुएँ भी बह्वर्थक होती हैं। किन्तु मन्त्रों के प्रतिपाद्य विषय देवता का भी मन्त्र-पठित पदों से एक निश्चित अर्थ ही सम्भव है, और देवता के अनुसार धातुओं का अर्थ भी निश्चित ही हो जाता है। अतः प्रकरणविरुद्ध अर्थ करने का किसी को भी अधिकार नहीं है। यौगिक प्रक्रिया का आश्रय करके जिन विद्वानों ने अपनी यह मान्यता बना ली है कि प्रत्येक मन्त्र के त्रिविध-आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक अर्थ होते हैं, यह भी शैली मिथ्या ही है। और अपनी मान्यता का निर्वाह ऐसे विद्वान् श्री वैद्यनाथ जी शास्त्री आदि अपने वेद-भाष्यों में नहीं कर सके हैं।

उदाहरणस्वरूप **'स पर्यगाच्छुक्रमकायम्०'** (यजु०) मन्त्र का त्रिविध प्रक्रिया से कैसे अर्थ सम्भव हो सकता है ? इस मन्त्र में जो पद पठित हैं, उनसे सर्वव्यापक, शरीरादि से रहित परमात्मा का वर्णन किया गया है, उन्हीं पदों का जीवपरक अथवा प्रकृतिपरक अर्थ कैसे सम्भव होगा ? क्या ईश्वर, जीव तथा प्रकृति के सभी गुण समान हो सकते हैं? अतः त्रिविध प्रक्रिया के मानने वालों को अपनी मान्यता पर पुनः विचार करना चाहिए। इस विषय में महर्षि दयानन्द की बहुत स्पष्ट यह मान्यता है—"जहां-जहां सर्वज्ञादि विशेषण हों, वहां-वहां परमात्मा का और जहां इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और अल्पज्ञादि विशेषण हों, वहां-वहां जीव का ग्रहण होता है।" (सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास)

मन्त्रार्थ में त्रिविध प्रक्रिया को मानने वाले विद्वान् अपने पक्ष में निम्न निरुक्त का प्रमाण भी दिया करते हैं—

तास्त्रिविधा ऋचः परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृता आध्यात्मिक्यश्च।। (निरु० ७।१)

किन्तु इससे उनके पक्ष की पुष्टि नहीं होती, प्रत्युत स्पष्ट खण्डन ही होता है। क्योंकि इसी स्थल पर आगे इनका लक्षण लिखा है। अर्थात् पुरुष व सर्वनाम के प्रयोग का निर्धारण भी किया गया है। महर्षि दयानन्द इसका अर्थ करते हुए लिखते हैं—

"वेदों के सब मन्त्र तीन प्रकार के अर्थों को कहते हैं। कोई परोक्ष अर्थात् अदृश्य अर्थों को, कोई प्रत्यक्ष अर्थात् दृश्य अर्थों को, और कोई अध्यात्म अर्थात् ज्ञानगोचर आत्मा और परमात्मा को। उनमें से परोक्ष अर्थ के कहने वाले मन्त्रों में प्रथम पुरुष...... प्रत्यक्ष अर्थ के कहने वालों में मध्यम पुरुष.... तथा अध्यात्म अर्थ के कहने वाले मन्त्रों में उत्तम पुरुष ....पचामीत्यादि क्रिया आती हैं।" (ऋ० भू० प्रश्नोत्तरविषयः)

इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक मन्त्र के त्रिविध अर्थ सम्भव नहीं हैं।

वेदसंज्ञा-विचार

प्रश्न—वेद किन ग्रन्थों का नाम है ?

उत्तर—ऋक्, यजुः, साम और अथर्व मन्त्रसंहिताओं का नाम वेद है, अन्य का नहीं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रश्न–(क) **मन्त्र-ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।।** (कात्यायनपरिशिष्ट प्रतिज्ञासूत्र)

(ख) **मन्त्र-ब्राह्मणं वेद इत्याचक्षते।।** (बौधायन गृह्यसूत्र २।६।३)

इत्यादि प्रमाणों से ब्राह्मणों का भी नाम वेद सिद्ध होता है।

उत्तर–(१) वेद-संहिता पुस्तक के प्रारम्भ में तथा अध्याय की समाप्ति पर सनातन काल से वेद शब्द लिखा जाता है। किन्तु ब्राह्मण पुस्तकों के प्रारम्भ व अध्याय की समाप्ति पर कहीं भी वेद शब्द लिखा नहीं मिलता। अतः ब्राह्मणभाग का नाम वेद नहीं है।

(२) ब्राह्मण ग्रन्थों के नाम इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी भी हैं। वे ईश्वरोक्त नहीं हैं किन्तु महर्षियों के किये वेदों के व्याख्यान हैं। ये वचन कात्यायनादि ऋषियों के भी नहीं हो सकते। किन्तु किसी धूर्त्तराट् ने कात्यायन ऋषि के नाम से बनाकर प्रसिद्ध किये हैं। यदि ये वाक्य ऋषियों के होते तो दूसरे ऋषियों की प्रतिज्ञा से विरुद्ध नहीं हो सकते थे। कात्यायन से भिन्न किसी अन्य ऋषि ने ब्राह्मणग्रन्थों को वेद नहीं माना है। यदि कोई कात्यायन मुनि का वचन का ही आग्रह करे तो क्या वह पाणिनि आदि दूसरे ऋषियों को आप्त नहीं मानना चाहता ? क्या एक विषय में परस्पर विरोधी दो सत्य हो सकते हैं ? और एक के वचन को मानकर सैकड़ों आप्त ऋषियों का विरोध करना विद्वानों को शोभा नहीं दे सकता।

प्रश्न–जैसे आप वेदों में पठित जमदग्नि, कश्यपादि शब्दों का व्यक्तिपरक अर्थ न मानकर चक्षु, प्राणादि अर्थ करके वेदों में इतिहास का निषेध कर रहे हैं, इसी प्रकार ब्राह्मणग्रन्थों में पठित याज्ञवल्क्यादि शब्दों के भी दूसरे अर्थ करके ब्राह्मणों को भी वेद क्यों नहीं स्वीकार करते।

उत्तर–ब्राह्मणग्रन्थों में याज्ञवल्क्यादि देहधारियों की कथाएँ लिखी हैं। जैसा देहधारियों का परस्पर व्यवहार होता है, वैसा ही वहाँ लिखा है। अतः ब्राह्मणग्रन्थों में व्यक्ति विशेषों का इतिहास है, वेदों में नहीं। जो वेदों में इतिहास होते तो वेद प्राचीन शाश्वत ईश्वरीय ज्ञान नहीं हो सकते। क्योंकि जिसका इतिहास जिस ग्रन्थ में लिखा होता है, वह ग्रन्थ उस मनुष्य के बाद का होता है।

प्रश्न–आप वेदों को स्वतः प्रमाण मानते हैं और ब्राह्मणग्रन्थों को परतः प्रमाण। जब ब्राह्मणग्रन्थों को आप वेदों का व्याख्यान मानते हैं, तो ब्राह्मणग्रन्थों को भी स्वतः प्रमाण क्यों नहीं स्वीकार करते।

उत्तर–मन्त्रभाग मूल है और ब्राह्मणग्रन्थ उनकी व्याख्याएँ हैं। अतः मन्त्रभाग ब्राह्मणग्रन्थों के अनुकूल या प्रतिकूल हो, तथापि सर्वथा माननीय होने के कारण स्वतः प्रमाण है और ब्राह्मणग्रन्थ वेदों की व्याख्या होने के कारण मूलार्थ से विरुद्ध हो तो अप्रामाणिक और अनुकूल हो तो प्रामाणिक होते हैं, अतः वे परतः प्रमाण हैं। क्या कोई

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इससे विपरीत अर्थात् व्याख्या के अनुकूल होने से मूल का प्रमाण और प्रतिकूल होने से अप्रमाण स्वीकार कर सकता है।

प्रश्न—यह कैसे पता लगे कि ब्राह्मणग्रन्थ वेदों के व्याख्याग्रन्थ हैं ?

उत्तर—क्योंकि ब्राह्मणग्रन्थों में सर्वथा संहिताओं के मन्त्रों की प्रतीकें धर-धर के पद, वाक्य और प्रकरणानुसार व्याख्या की है। जैसे तैत्तिरीय शाखा में 'इषे त्वोर्जे त्वेति' प्रतीक धर के व्याख्या की है। किन्तु वेद संहिताओं में किसी ग्रन्थ की प्रतीक नहीं रक्खी हैं। इसलिए मन्त्रभाग मूलवेद व्याख्येय और ब्राह्मणग्रन्थ उनकी व्याख्या हैं। परमेश्वर-प्रोक्त होने से वेद मूल-वृक्ष और आश्वलायनादि सब शाखाएँ ऋषि-मुनि कृत हैं।

प्रश्न—जैसे आप—**"ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथानाराशंसीत्यादि०"** इत्यादि (तैत्तिरीया० २। ९) वचनों से शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों के इतिहास पुराणादि नाम मानते हैं, वैसे ही श्रीमद्भागवतादि के नाम क्यों नहीं मानते ?

उत्तर—भागवतादि ग्रन्थों के ग्रहण में कोई प्रमाण नहीं मिलता। और इन ग्रन्थों में मतों के परस्पर विरोध और लड़ाई आदि की असम्भव मिथ्या कथा अपने-अपने मत के अनुसार लोगों ने लिख रखी हैं। अतः इतिहास, पुराणादि नामों से भागवतादि ग्रन्थों का ग्रहण कदापि नहीं हो सकता। प्राचीन ऋषि-मुनियों ने ब्राह्मणग्रन्थों को वेद नहीं माना है। इसमें निम्नलिखित प्रमाण हैं—

(१) महर्षि पतञ्जलि ने व्याकरण महाभाष्य में शब्दों के दो भेद माने हैं—वैदिक और लौकिक। वैदिक शब्दों के उदाहरण देते हुए वहाँ लिखा है—

"वैदिकाः खल्वपि—शन्नो देवीरभिष्टये। इषे त्वोर्जे त्वा। अग्निमीडे पुरोहितम्। अग्न आयाहि वीतये इति।"

यहाँ चारों वेदों के उदाहरण दिखाए हैं, ब्राह्मण ग्रन्थों का एक भी नहीं दिया। अतः स्पष्ट है कि वैदिक शब्दों में ब्राह्मण ग्रन्थों का ग्रहण नहीं होता।

(२) महर्षि पाणिनि ने—

छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि। (अ० ४। २। ६६)

द्वितीया ब्राह्मणे।। (अ० २। ३। ६०)

चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि।। (अ० २। ३। ६२)

इन सूत्रों में ब्राह्मण व वेद को बतलाने के लिए पृथक्-पृथक् छन्द तथा ब्राह्मण शब्दों का ग्रहण किया है। अन्यथा लाघवक्रम के हिमायती ऋषि एक ही शब्द से कार्य ले सकते थे। अतः पाणिनि मुनि ने वेद-ब्राह्मण को भिन्न-भिन्न मानकर ही ऐसा सूत्रविन्यास किया है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(३) महर्षि जैमिनी ने पूर्वमीमांसा में—

तच्चोदकेषु मन्त्राख्या।। (अ० २। पा० १। सू० ३२)

शेषे ब्राह्मणशब्दः।। (अ० २। १। सू० ३३)

मन्त्र और ब्राह्मण को भिन्न-भिन्न माना है। अर्थात् अग्निहोत्रादि के विधायक वेद-वाक्यों का नाम मात्र मन्त्र है, और मन्त्रों के व्याख्यारूप शेष को ब्राह्मण कहते हैं। जो पदार्थ जिसके उपकारार्थ होता है वह उसका शेष कहलाता है। जैसे स्वामी के लिए सेवक आदि है। व्याख्यान भी व्याख्येय का शेष होता है। और ब्राह्मणग्रन्थों को वेद न मानते हुए आगे और भी स्पष्ट कर दिया है—

अनाम्नातेष्वमन्त्रत्वमाम्नातेषु हि विभागः। (अ० २। १। ३४)

अर्थात् ईश्वरप्रोक्त न होने से ब्राह्मण ग्रन्थों में वेदत्व नहीं है। और ईश्वर प्रोक्त मन्त्रों को ही वेद कहा जाता है।

(४) न्यायदर्शन के भाष्यकार महर्षि वात्स्यायन ने—

वाक्यविभागस्य चार्थग्रहणात्।। (न्याय० २। २। ६०)

सूत्र के साथ में ब्राह्मणग्रन्थों के शब्दों को लौकिक ही माना है।

(५) महर्षि पाणिनि मुनि ने **'दृष्टं साम'** (अ० ४। २। ७) तथा पुराणप्रोक्तेषु **'ब्राह्मणकल्पेषु'** (अ० ४। ३। १०५) सूत्रों में वेदों को दृष्ट तथा ब्राह्मण ग्रन्थों को ऋषि प्रोक्त कहा है।

(६) ब्राह्मणग्रन्थों की अन्तःसाक्षी से भी स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण वेदों से भिन्न हैं—**एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः।** (गोपथ० पू० १। १०)

महर्षियों ने यहां वेदों से भिन्न ब्राह्मणग्रन्थों की—गणना की है।

(७) महर्षि पतञ्जलि ने लिखा है—

'चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्याः'।। (महा० १। १। १)

यहां वेदों को चार कहकर और रहस्य = उपनिषत् से भिन्न कहकर स्पष्ट ही ब्राह्मणों को वेद नहीं माना। उपनिषद् ब्राह्मणों के ही भाग हैं।

(८) निरुक्त शास्त्र में—

इत्यपि निगमो भवति।।

इति ब्राह्मणम्।।

इत्यादि वचनों से वेद और ब्राह्मणों को भिन्न-भिन्न माना है।

(९) 'ब्राह्मण' शब्द का अर्थ है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ब्रह्मभिः (चतुर्वेदविद्भिर्ब्राह्मणैर्महर्षिभिः) प्रोक्तानि ब्राह्मणानि।

अर्थात् ब्रह्मादि-महर्षि प्रोक्त होने से इन ग्रन्थों को ब्राह्मण कहते हैं।

(१०) ब्राह्मणग्रन्थों में अनित्य व्यक्तियों का इतिहास वर्णन है। जैसे—

(क) शत० १४। ६। ३। में उद्दालक, आरुणि और उसके शिष्य वाजसनेय याज्ञवल्क्य का वर्णन है।

(ख) शत० १०। ६। १। १। में कैकेय और अश्वपति राजा का वर्णन है।

(ग) शत० ११। ६। २। १। में विदेह के राजा जनक का श्वेतकेतु आदि ब्राह्मण के साथ जाने का वर्णन है।

(घ) शतपथब्राह्मण में याज्ञवल्क्य, जनक, गार्गी, मैत्रेयी आदि की कथाओं का वर्णन है।

उपर्युक्त प्रमाणों से वेद व ब्राह्मणों का बहुत ही पृथक्त्व सिद्ध हो जाता है। अतः सायणाचार्य का यह कथन—

मन्त्रब्राह्मणात्मकत्वं तावददुष्टं लक्षणम्।

मन्त्रब्राह्मणात्मको हि वेदः।।

सर्वथा मिथ्या ही है। और उसके अपने ही वचनों के भी विपरीत है—

(क) **यद्यपि मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदस्तथापि ब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यारूपत्वान्मन्त्रा एवादौ समाम्नाताः।।** (तैत्तिरीयसं० भा०पृ० ७)

(ख) **तत्र शतपथब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यानरूपत्वाद्०।।**

(काण्वसंहिता भा०पृ० ८)

यहाँ सायणाचार्य ने ब्राह्मणग्रन्थों को स्वयं वेद-मन्त्रों की व्याख्या बताया है।

वेद ही ईश्वरकृत हैं अन्य ग्रन्थ नहीं

प्रश्न—वेद ईश्वरकृत हैं अन्यकृत नहीं, इसमें क्या प्रमाण है ?

उत्तर—ईश्वरकृत पुस्तक में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए—

(क) जैसा ईश्वर पवित्र, सर्वविद्यावित्, शुद्ध गुण, कर्म, स्वभाव, न्यायकारी, दयालु आदि गुणवाला है, वैसे जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल कथन हो, वह ईश्वरकृत, अन्य नहीं।

(ख) जिसमें सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण, आप्तों के और पवित्रात्मा के व्यवहार से विरुद्ध कथन न हो, वह ईश्वरोक्त है।

(ग) जैसा ईश्वर का निर्भ्रम ज्ञान है वैसा जिस पुस्तक में भ्रान्ति-रहित ज्ञान का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रतिपादन है, वह ईश्वरोक्त है।

(घ) जैसा परमेश्वर है और जैसा सृष्टिक्रम रक्खा है, वैसा ही ईश्वर, सृष्टि, कार्य, कारण और जीव का प्रतिपादन जिसमें होवे, वह परमेश्वरोक्त पुस्तक होता है। और जो प्रत्यक्षादि प्रमाणविषयों से अविरुद्ध, शुद्धात्मा के स्वभाव से विरुद्ध न हो, इस प्रकार के वेद हैं, अन्य बाईबल, कुरानादि नहीं।

प्रश्न–वेद की ईश्वर से होने की क्या आवश्यकता है ? क्रमशः ज्ञान-वृद्धि होते-होते मनुष्य वेद-पुस्तक भी बना लेते।

उत्तर–शिक्षा के बिना कोई पुस्तक नहीं बना सकते क्योंकि बिना कारण के कार्योत्पत्ति का होना असम्भव है। जैसे जंगली मनुष्य सृष्टि को देखकर भी विद्वान् नहीं होते और शिक्षा देने से विद्वान् हो जाते हैं। यदि परमात्मा आदि सृष्टि में ऋषियों को वेद की विद्या न देता और वे ऋषि दूसरों को न पढ़ाते तो कोई भी विद्वान् नहीं हो सकता। जैसे किसी बालक को पैदा होते ही एकान्त जंगल में या अविद्वानों वा पशुओं के संग में रख देवे तो वह कभी भी विद्वान् नहीं हो सकता।

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।। योग सू०।।

उस परमात्मा को शास्त्रों में पूर्वज ऋषियों का भी गुरु कहा है।

वेदों के ईश्वरोक्त होने में वेदों के ही प्रमाण

(१) **तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।**
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत।। (यजु० ३१। ७)

अर्थात् उसी परब्रह्म से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और (छन्दांसि) अथर्ववेद, ये चारों वेद उत्पन्न हुए।

(२) **यस्माद् ऋचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।**
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्।।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः।। (अथर्व० १०। २३। ४। २०)

अर्थात् जो सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है, उसी से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, ये चारों उत्पन्न हुए।

(३) **एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः, सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इत्यादि।।** (शत० का० १४, अ० ५)

महाविद्वान् महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्त्री मैत्रेयी को उपदेश करते हैं कि हे मैत्रेयि! सर्वव्यापक परमेश्वर से ही ऋक्, यजुः, साम और अथर्व, ये चारों वेद उत्पन्न हुए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(४) **तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्।।** (वैशे०। १। ३)

अर्थात् वेद ईश्वरोक्त हैं। इनमें सत्यविद्या और पक्षपातरहित धर्म का ही प्रतिपादन है। ईश्वरोक्त होने से ही वेदों की प्रामाणिकता है।

देवता-विचार

देवता मन्त्रों का प्रतिपाद्य विषय होता है। यौगिक-प्रक्रिया से पदों के विभिन्न अर्थ होते हुए भी प्रकरणानुसार उनका अर्थ निश्चित हो जाता है। अतः वेदभाष्यकार को मन्त्रार्थ करने से पूर्व प्रकरण को बताने वाले देवता का स्पष्टीकरण अवश्य करना चाहिए। शौनकीय 'बृहद्वेता' में देवता का महत्त्व बताते हुए लिखा है—

वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नतः।

दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदर्थमवगच्छति।। (अ० १। २)

अर्थात् प्रत्येक मन्त्र में देवता का ज्ञान परमावश्यक है। क्योंकि देवता को जानने वाला ही मन्त्रों के अर्थों को जान सकता है। महर्षि यास्क लिखते हैं—

(क) **अथातो दैवतं तद् यानि नामानि प्राधान्यस्तुतीनां देवतानां तद्दैवतमित्याचक्षते। सैषा देवतोपपरीक्षा।** (निरु० ७। १)

महर्षि दयानन्द इनकी व्याख्या करते हुए लिखते हैं—"दैवत उनको कहते हैं कि जिनके गुणों का कथन किया जाय अर्थात् जो-जो संज्ञा जिन-जिन मन्त्रों में जिस-जिस अर्थ की होती है, उन-उन मन्त्रों का नाम वही देवता होता है। जैसे (अग्निं दूतम्०) इस मन्त्र में 'अग्नि' शब्द चिह्न है, यहां इसी मन्त्र का अग्नि देवता जानना चाहिए। ऐसे ही जहां-जहां मन्त्रों में जिस-जिस शब्द का लेख है, वहां-वहां उस-उस मन्त्र को ही देवता समझना होता है। इसी प्रकार सर्वत्र समझ लेना चाहिए। सो देवता शब्द से जिस-जिस गुण से जो-जो अर्थ लिये जाते हैं, सो-सो निरुक्त और ब्राह्मणादि ग्रन्थों में अच्छी प्रकार लिखा है। इसमें यह कारण है कि ईश्वर ने जिस-जिस अर्थ को जिस-जिस नाम से वेदों में उपेदश किया है, उस-उस नाम वाले मन्त्रों से उन्हीं अर्थों को जानना होता है।" (ऋ० भू० वेदविषय०)

(ख) **यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति।।** (निरु० ७। १)

इसकी व्याख्या करते हुए महर्षि लिखते हैं—

"ऋषिरीश्वरः। सर्वदृग् यत्कामो यं कामयमान इममर्थमुपदिशेयमिति स यत्कामः। यस्यां देवतायामार्थपत्यमर्थस्य स्वामित्वमुपदेष्टुमिच्छन् सन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तदर्थगुणकीर्त्तनं प्रयुक्तवान् अस्ति स एव मन्त्रस्तद्देवतो भवति। किं च

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यदेवार्थप्रतीतिकरणं दैवतं प्रकाश्यं येन भवति स मन्त्रो देवताशब्दवाच्योऽस्तीति विज्ञायते।''

"ईश्वर ने जिस-जिस अर्थ को जिस-जिस नाम से वेदों में उपदेश किया है, उस-उस नाम वाले मन्त्रों से उन्हीं अर्थों को जानना होता है।" (ऋ० भू० वेदविषयविचारः)

(ग) **''यस्य यस्य मन्त्रस्य योऽर्थोऽस्ति स सोऽर्थस्तस्य देवताशब्देनाभिप्रायार्थ-विज्ञापनार्थं प्रकाश्यते। एतदर्थं देवताशब्दलेखनं कृतम्।''** (ऋ० भू० प्रश्नोत्तरविषयः)

(घ) **तद् येऽनादिष्टदेवतामन्त्रास्तेषु देवतोपपरीक्षा यद्देवतः स यज्ञो वा यज्ञाङ्गं वा तद्देवता भवन्त्यन्यत्र यज्ञात्प्राजापत्या इति याज्ञिकाः। नाराशंसा इति नैरुक्ताः। अपि वा सा कामदेवता स्यात् प्रायो देवता वास्ति ह्याचारो बहुलं लोके देवदेवत्यमतिथि-देवत्यं पितृदेवत्यं याज्ञदैवतो मन्त्र इति।** (निरु० ७। ४)

इसकी व्याख्या महर्षि दयानन्द ने इस प्रकार की है—

"जिन-जिन मन्त्रों में सामान्य अर्थात् जहाँ-जहाँ किसी विशेष अर्थ का नाम प्रसिद्ध नहीं दीख पड़ता, वहां-वहां यज्ञ आदि को देवता जानना होता है।"

"तथा जिन मन्त्रों से यह यज्ञ सिद्ध होता है, वे भी उन यज्ञों के देवता हैं और जो इनमें भिन्न मन्त्र हैं, उनका प्राजापत्य अर्थात् परमेश्वर देवता है तथा जो मन्त्र मनुष्यों के अर्थ का प्रतिपादन करते हैं, उनके मनुष्य देवता हैं। इसमें बहुत प्रकार के विकल्प हैं, कि कहीं पूर्वोक्त देवता कहाते हैं, कहीं यज्ञादि कर्म, कहीं माता, कहीं पिता, कहीं विद्वान्, कहीं अतिथि और कहीं आचार्यदेव कहाते हैं। परन्तु इसमें इतना भेद है कि यज्ञ में मन्त्र और परमेश्वर को ही देव मानते हैं।" (ऋ० भू० वेदविषयविचारः)

(ङ) **इतीमा देवता अनुक्रान्ता। सूक्तभाजो हविर्भाजः।**
ऋग्भाजश्च भूयिष्ठाः। काश्चिन्निपातभाजः।। (निरु० ७। १३)

अर्थात् इस प्रकार यहां देवताओं का वर्णन किया गया। कुछ देवता सूक्तभाक् अर्थात् एक या अनेक सूक्तों में विषय का प्रतिपादन करते हैं। कुछ देवता हविर्भाक् होते हैं, सूक्तभाक् नहीं। कुछ देवता ऋग्भाक् अर्थात् एक या अनेक ऋचाओं में विषय का प्रतिपादन करते हैं। कुछ देवता ऐसे भी हैं, जो दूसरे देवों के साथ मिलकर विषय को बताते हैं।

इन उपर्युक्त प्रमाणों से सुस्पष्ट होता है कि देवता मन्त्रों का प्रतिपाद्य विषय होता है। मन्त्रार्थ में उसकी उपेक्षा करने से मन्त्रार्थ प्रकरण-विरुद्ध हो जाता है। यास्काचार्य ने निरुक्त में इसी दोष को दूर करने के लिए लिखा है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विज्ञायते। (निरु० २। ११)

अर्थात् ऋषि वेद-मन्त्रों के अर्थ के द्रष्टा होते हैं, औपमन्यव आचार्य ने भी कहा है कि वेदों में प्रयुक्त स्तोम = स्तुति इत्यादि विषय मन्त्रों के वास्तविक अर्थ का साक्षात्कार करने वालों को ही ऋषि के नाम से पुकारा जाता है। तपस्या करते हुए जो इनको स्वयम्भू नित्य वेद के अर्थ का भान हुआ, इसलिए ये ऋषि कहलाए। यही वेद-मन्त्रों का रहस्य सहित अर्थ दर्शन ही ऋषित्व है।

(७) महर्षि दयानन्द ने अपने अमरग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में भी लिखा है—

"ऋषयो मन्त्रदृष्टयः मन्त्रान्सम्प्रादुः।।

जिस-जिस मन्त्रार्थ का दर्शन जिस-जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहले उस मन्त्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था, किया और दूसरों को पढ़ाया भी, इसलिए अद्यावधि उस-उस मन्त्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा आता है। जो कोई ऋषियों को मन्त्रकर्त्ता बतलावें, उनको मिथ्यावादी समझें। वे तो मन्त्रों के अर्थप्रकाशक हैं।" (सत्यार्थप्रकाश सप्तमसमुल्लास)

इत्यादि महर्षि दयानन्द के लेख तथा प्राचीन शास्त्रों के प्रमाणों से स्पष्ट है कि मन्त्रों के प्रारम्भ में लिखे ऋषि ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। ये मन्त्रों के रचयिता नहीं हैं।

अल्मोड़ा में गुरुकुल का शुभारम्भ

अल्मोड़ा में आर्ष गुरुकुल का शुभारम्भ गुरु पूर्णिमा १० जुलाई ९८ से बड़े हर्ष व उत्साह के साथ किया गया है। यह कुमाऊँ में पहला गुरुकुल है, जो अल्मोड़ा से १६ कि०मी० दूर रानीखेत मार्ग पर शाले ग्राम में दान में प्राप्त भूमि पर शुभारम्भ किया गया है। दानदाताओं का सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। अपनी धनराशि बैंक ड्राफ्ट/चैक के द्वारा आचार्य, महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, अल्मोड़ा को प्रेषित कर पुण्य के भागी बन सकते हैं।

गुरुकुल में प्रवेशार्थ पाँचवीं कक्षा उत्तीर्ण होना आवश्यक है। गुरुकुल में सच्चरित्र नागरिक बनाने के लिए शुद्ध वातावरण का लाभ उठाकर भाग्यशाली बन सकते हैं।

डा० जयदत्त शास्त्री आचार्य, म०द० आर्ष गुरुकुल, अल्मोड़ा (उ०प्र०)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेदों में वन्य जीवन

जयपाल विद्यालंकार, ('जनज्ञान' से साभार)

संहिता-काल में वन के सम्बन्ध में मनुष्य की क्या अवधारणा थी। इसका विवेचन करने से पहले हमें उस समय की परिस्थितियों को ध्यान में रखना होगा। उस काल में जनसंख्या कम थी, जंगल अधिक और नगर या गांव अपेक्षाकृत कम थे। जीवन सहज था और जीने के साधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे। मनुष्य प्रकृति के साथ उलझ कर उसका व्यतिक्रम या अनावश्यक दोहन नहीं करता था। प्रकृति के साथ उसकी अनुरूपता थी। वस्तुतः उसके जीवन का आधार जंगल, पहाड़, नदी, नाले तथा पालतू और जंगली पशु थे। प्रकृति का जो-जो उत्पादन उसके जीवन से जुड़ा हुआ था उसके प्रति वह श्रद्धावान् था। इस श्रद्धा-भाव की परिणति इन प्राकृतिक शक्तियों में देवत्व की कल्पना में हुई। वैदिक संस्कृति में इन प्राकृतिक शक्तियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन के लिए पंचमहायज्ञों में भूत-यज्ञ को मान्यता मिली। प्रत्येक आर्य गृहस्थ के लिए प्रतिदिन पंच महायज्ञों को करना आवश्यक हुआ। संहिता काल के समाज की वन के प्रति सामान्यतः मित्रता की भावना थी। अरण्य भयंकर होने पर भी मनुष्य का मित्र था। वहाँ के पशु-पक्षी मनुष्य के आखेट मात्र के लिए न होकर उसके मित्र थे। यह धरती जैसे उसके लिए थी वैसे ही जंगलों और जंगल के प्राणियों के लिए थी। प्राकृतिक घटनाओं का आनन्द वह वन्य जीवन के साथ मिलकर लेता था। वन और वन्य जीवन के साथ उसकी सम्बद्धता सहज थी। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के १४६ वें सूक्त में अरण्य के प्रति मैत्री और श्रद्धा-भाव की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। यहाँ अरण्य को देवत्व के गरिमामय पद पर आसीन किया गया है। सूक्त का देवता है 'अरण्यानी'। ऋषि ऐरम्मदो देवमुनिः कहते हैं—अरण्यानी किसी की हिंसा नहीं करता-**न वा अरण्यानिः हन्ति** और **अन्यश्चेत् न अभिगच्छति।** दूसरा भी कोई उस पर आक्रमण नहीं करता। **स्वादोः फलस्य जग्ध्वाय यथाकामं नि पद्यते।** वह मधुर फलों का आहार करके अपनी इच्छा के अनुसार सुख से रहता है। ऋ० १०। १४६। ५। ऋषि कितने सहज भाव से आत्मीयता से निरभिमानी अरण्य देवता से पूछता है—"हे अरण्य देवते ! वन में जो तू देखते-देखते अन्तर्धान हो जाती है वह तू नगर ग्राम की कुछ विचारणा कैसे नहीं करती। निर्जन अरण्य में क्यों जाती हो। तुझे डर भी नहीं लगता।

अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि। कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दतीं।।

ऋ० १०। १४६। १

जंगल में गुरुगम्भीर आवाज करने वाले प्राणी के समीप जब चीं चीं शब्द करने वाला प्राणी प्राप्त होता है तब मानो वीणा के स्वरों के समान स्वरोच्चारण करके वह अरण्य देवता का यशोगान करता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"वृषारवाय वदते यदुपावति चिच्चिकः। आघाटिभिरिव धावयन्नरण्यानिर्महीयते।" (ऋक् १०। १४६। २) अरण्य प्राणियों की गर्जना में मिली पक्षियों की चहचहाहट में अरण्य देवता के यशोगान की कल्पना कोई अरण्य-प्रेमी ही कर सकता है हिंसक आखेटक नहीं। इसी सूक्त के तीसरे मन्त्र में अरण्य के साथ मनुष्य का सम्बन्ध कितना आत्मीय दिखाया गया है—गाँवों के समान अन्य प्राणी भी इस अरण्य में चरते हैं **उत गावः इव अदन्ति।** और लता-गुल्म आदि घर के समान दिखाई देते हैं **उत वेश्म इव दृश्यते** और सायंकाल के समय गाड़ियाँ वन में जंगल में पैदा होने वाले लकड़ी चारा आदि सामान को लेकर निकलती हैं—**उतो अरण्यानिः सायं शकटीरिव सर्जति** भाव ऐसा प्रतीत होता है मानो अरण्य देवता अपने घर आए हुए अतिथियों को उपहारों से लादकर वापस जाते समय विदा करता है। एक ओर मन्त्र में कहा गया है हे अरण्य देवता ! यह एक पुरुष गाय को बुला रहा है और दूसरा लकड़ी काट रहा है। रात्रि में अरण्य में रहने वाला पुरुष नाना प्रकार के शब्द सुनकर ऐसा मानता है, मानो कोई भयभीत होकर पुकार रहा हो। **गामङ्गैष आह्वयति दार्वङ्गैषो अपावधीत्। वसन्नरण्यान्यां सायमक्रुक्षदिति मन्यते।** ऋषि अरण्य की स्तुति करते हुए कहते हैं—**आञ्जनगन्धिं सुरभिं बह्वन्नामकृषीवलाम्। प्राहं मृगाणां मातरमरण्यानिमशंसिषम्।।** (ऋक् १०। १४६। ६) कस्तूरी आदि उत्तम सुवास से युक्त, सुरभि तथा विपुल फल-मूल आदि अन्न से पूर्ण, खेतीहारों से रहित और पशुओं की माता अरण्यानि की मैं स्तुति करता हूँ। ऋग्वेदकालीन समाज में वन तथा वन में रहने वाले प्राणियों के प्रति मनुष्य का कितना मैत्री भाव था इसका अच्छा दिग्दर्शन ऋग्वेद के इस सूक्त से होता है।

अथर्ववेद में विभिन्न औषधियों का प्रचुर वर्णन है। इन सब का खजाना वन है। अथर्ववेद में वनस्पतिः, अपामार्ग, मरुत् तथा पर्जन्य देवता के सूक्त भरे पड़े हैं। चतुर्थ काण्ड के तीसरे सूक्त का देवता व्याघ्र है। अथर्व ऋषि कहते हैं बाघ, भेड़िया और चोर मनुष्य ये तीनों यहाँ से भागकर चले गए हैं—**उदितस्त्रयो अक्रमन्व्याघ्रः पुरुषो वृकः।** (अथर्व० ४। ३। १) दूर के मार्ग से भेड़िया चला जावे और उससे भी दूर से चोर चला जावे। दूर से दांत वाली रस्सी अर्थात् सांपिन चली जावे और पापी दूर से भाग जावे। **अक्ष्यौ च ते मुखं च ते व्याघ्र जम्भयामसि। आत्सर्वान्विंशतिं नखान्।।** (अथर्व० ४। ३। ३) बाघ की आँखें, मुख के दांत और उसके बीस नाखून हम नष्ट कर देते हैं। अगले मन्त्र में कवि कहता है—तीक्ष्ण दांतें वालों में बाघ को, भेड़िये को और पाप को तथा दुष्टों में चोर और लुटेरे को हम नष्ट करते हैं।

व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि। आदुष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम्। (अथर्व० ४। ३। ४)। यही मन्त्र ६ में कहा गया है—हिंसक पशु के दांत तोड़े गए और पसलियां काटी गई हैं। सब हिंसक पशु नीचे मुख करके डर से भाग जावें। इस सूक्त में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ध्यान देने योग्य यह भी है कि चोर और लुटेरे की तुलना व्याघ्र भेड़िये और सांप से की गई है। इन हिंसक जन्तुओं के प्रति हिंसा का भाव सम्भवतः इस कारण है कि ये नगर, ग्राम में आकर उत्पात मचाते हैं। आज की भाषा में इन्हें नरभक्षी के सदृश समझना चाहिए। ऐसा भी प्रतीत होता है कि इस सूक्त का कथ्य चोर और लुटेरों के प्रति क्रोध एवं घृणा का प्रदर्शन है। व्याघ्र आदि हिंसक पशु तो समानधर्मा पात्र हैं।

अथर्ववेद के चतुर्थ काण्ड का पन्द्रहवां सूक्त वृष्टि सूक्त के नाम से प्रसिद्ध है। सूक्त के देवता हैं—मरुतः पर्जन्यश्च। वर्षा तो नगर या ग्राम की भांति ही अरण्य में भी होती है परन्तु इस सूक्त को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है मानो अरण्य में वर्षा की छवि कुछ और होती है। **समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यन्तु। महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु।।** अथर्व० ४। १५। १। चारों दिशाओं में बादल आ जायें, जोर से वायु बहे, उस वायु से मेघ आकाश में आ जायें और महान् गर्जना करते हुए जल-धाराएँ पृथ्वी को तृप्त करें। मेघ गर्जना करें, बिजली कड़के, समुद्र उछल पड़े, भूमि पर ऐसी वृष्टि हो कि किसान अपने घर जाकर आश्रय लें। **अभिक्रन्द स्तनयार्दयोदधिं**...। (अथर्व० ४। १५। ६)। दसवें मन्त्र में कहा गया है—मेघों में विद्युत् रूपी अग्नि है। वही वृष्टि करता है इसलिए वह औषधियों का अधिपति है। वह ऊपर से वृष्टि करे और हमें अमृत जल देवे, उससे प्राणियों को जीवन मिले, इस प्रकार हम सब की रक्षा हो। बिजली की कड़क, झंझावात, अजस्र जल-धाराएँ, चारों ओर पानी ही पानी। वर्षा थमी और मेंढक टर्राने लगे। इस सूक्त के ऋषि अथवा आनन्दविभोर होकर कह उठे—**संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः। वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः।।** (अथर्व० ५। १४। १३)। व्रत करने वाले ब्राह्मणों के समान ये मेंढक मानो सालभर से व्रत कर रहे थे, अब अपना व्रत समाप्त करके बाहर आये हैं। और प्रवचन कर रहे हैं। और अधिक वर्षा के लिए मेंढकों से प्रार्थना करते हुए ऋषि कहता है—**उपप्रवद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि। मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व विगृह्य चतुरः पदः।** (अथर्व० ४। १। १४)

मेंढको ! हे छोटी मेंढकी ! तादुरि बोल, वर्षा को बुला और तालाब के मध्य में चारों पैर फैलाकर तैर। इसी भाव से विभोर ऋषि आगे कहता है—हे बिल में रहने वाली खण-वखे, हे शान्त रहने वाला खेम-खे हे छोटी मेंढकी तादुरि वृष्टि के बीच में आनन्दित हो। वर्ष मध्य वनुध्वं (अथर्व० ४। १५। १५)। सूक्त का अन्तिम मन्त्र १६ है। **महान्तं कोशमुदचाभिषिञ्च सविद्युतं भवतु वातु वातः। तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा आनन्दिनीरोषधयो भवन्तु।।** मेघ, आ जायें, खूब वृष्टि हो, बिजली कड़के, वायु बहता रहे, औषधियाँ पुष्ट हों, खूब अन्न उत्पन्न हो, यज्ञ बढ़ते जायें और आनन्द ही आनन्द हो। यह सूक्त वर्षा के सम्बन्ध में उत्तम काव्य है। प्रकृति तथा वन से वैदिक समाज का जो आह्लादक सम्बन्ध है उसका अच्छा चित्र इस सूक्त में उभरा है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यजुर्वेद के चौबीसवें अध्याय में चालीस मन्त्र हैं। बीसवें मन्त्र में पशु-पक्षियों के नाम गिनाये गये हैं। लगभग १६० जीव-जन्तुओं के नाम इन मन्त्रों में आये हैं। पशु, पक्षी, रेंगने वाले सर्प, अजगर तथा जलचर सारस, बगुले और नाकों का वर्णन यहाँ आया है। प्रत्येक प्राणी का सम्बन्ध किसी न किसी देवता से है। कहीं उस देवता के लिए बलि रूप में लिया गया वह प्राणी प्रतीत होता है और कहीं मात्र उसका परस्पर सम्बन्ध बताया गया प्रतीत होता है। बीसवें मन्त्र में क्रियापद 'आलभते' आया है जो प्रायः शेष सभी मन्त्रों में अनुवृत्त होता है। (**वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान् वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्तिका हेमन्ताय ककराञ्छिशिराय विककरान्।**) कपिंजल का सम्बन्ध वसन्त से, कलविंक (चिरौटा) का ग्रीष्म से, तीतर का वर्षा से, वर्तिका बत्तख का शरत् से और ककर तथा विककर दोनों बिन पहचाने पक्षियों का क्रमशः हेमन्त और शिशिर से सम्बन्ध बताया गया है। इन मन्त्रों में पशु-पक्षियों की विस्तृत सूची दे दीं गई है। चतुर्थ्यन्त यह पद कहीं देवता रूप है। जैसे—मित्र, वरुण, केश, सोम, वायु, अग्नि, रुद्र, यम, बृहस्पति, त्वष्टा, प्रजापति, पूषा, इन्द्र, सूर्य इत्यादि। कहीं यह पद वह प्रकृति रूप है जिससे उस प्राणी का सम्बन्ध है या मण्डूक पर्जन्य, आखू-चूहा भूमि, पांक्त।

आकाश में पंक्ति-बद्ध होकर उड़ने वाले पक्षी अन्तरिक्ष, शिशुमार-घड़ियाल समुद्र दार्वाघाट-कठफोड़ पक्षी वनस्पति, शल्यक सेही ही अर्थात् लज्जा, उद्र-केंकड़ा अप, अजगर, बल, पिक काम, शकुनि पक्षी सामान्य शर अर्थात् बाण से सम्बन्ध बताया गया है। इस सूची को देखने से यह भी पता चलता है कि उस काल में पक्षियों और विशेषतः मृगों हिरणों की अनेक जातियाँ थीं, इनमें से बहुत सी आज लुप्त हो चुकी हैं। हरिणों या उनसे मिलते-जुलते हुए पशुओं के नाम इस प्रकार हैं—ऋष्य, रुरु, न्यंकु, पृषत्, कुलुंग, परस्वत्, गोर, महिष, गवय, गोमृग, आरण्य, मेष, कृष्णः, रोहित, गवयी, गोरमृग, पुरुष मृग, एणी, सृमर, नीलगाय, महिष भैंसा भी हो सकता है और सांभर भी। पहले बताये गये १६० विभिन्न जन्तुओं के नामों से अधिकांश तो पक्षियों के ही नाम हैं। ये पक्षी जंगली भी हैं और घरेलू भी। इनमें बहुत से तो लुप्त हो चुके हैं अतः बिन पहचाने हैं। कुछ ऐसे नाम भी हैं जैसे—जंतु-चमगादड़, प्लुपी-दीपक, पुष्करसाद-सारस, कुंच लम्बी पूंछ वाला कोई पक्षी, शका-मधुमक्खी, मयु, किन्नर अर्थात् जिसे देखकर कोई पूछे क्या है यह भी मनुष्य है। यह या तो तो चिम्पेजी प्रतीत होता है या फिर ऐसी नसल का पुरुप जिनके दाढ़ी-मूंछ नहीं होती और उसे देखकर अनायास ही मुँह से निकल पड़ता है और अरे क्या यह भी पुरुष नर है। अन्य नाम देखिये पुरुषवाक् शारी-मनुष्य की वाणी बोलने वाली मेना, पुरुषवाक् शुकः—मनुष्य की वाणी बोलने वाला तोता, श्वावित् सेही, पुरुषमृगः-वनमानुष, दार्वाघाटः—कठफोड़ पक्षी, सेही के लिए दूसरा नाम आया है शल्यकः, उद्रः—केंकड़ा, कषा-छछुन्दर, मान्थाल—छिपकली, दात्यौहः—कौआ, कृष्णश्वा—काला कुत्ता। इन सब

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्राणियों के नाम यजुर्वेद के इस चौबीसवें अध्याय के २०-४० में मन्त्र में दिये गए हैं। इससे यही प्रतीत होता है कि समाज का इन पशु-पक्षियों से अच्छा परिचय था। वस्तुतः संहिता-काल में वन्य जीवन अलग से चर्चा की अपेक्षा नहीं रखता। उस समाज में जीवन में तो यह स्वाभाविक रूप से ओतप्रोत था। नागरिकता का इतना आधिपत्य उस काल में नहीं हुआ था कि जंगल और जंगल के प्राणियों के सम्बन्ध में पुस्तक पढ़कर जाना जाये।

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ

वैसे तो आप द्वारा सम्पादित दयानन्द-सन्देश का प्रत्येक अंक कुछ न कुछ संग्राह्य सामग्री लेकर आता है, परन्तु जून, ९८ के अंक में विशेष रूप से संग्रहणीय 'अयन्त इध्म आत्मा--- मन्त्र से पाँच आहुतियाँ क्यों' लेख में विद्वत्तापूर्ण व्याख्या की गई है। पाँच वरदानों की बात मिथ्या है, इसका अच्छा समाधान किया गया है। अमर शहीद राजपाल की जीवनी देकर अच्छा प्रेरणाप्रद प्रयास किया गया है। ईसाई मिशनरियों के विरुद्ध बड़ी-बड़ी धनाढ्य सभाओं को सामूहिक प्रयास करने चाहिए और टी०वी० तथा रेडियो पर भी प्रचार-प्रसार करने के सुप्रयास करने चाहिये **आर०सी० सक्सैना, शास्त्रीनगर (मेरठ)**

आप द्वारा सम्पादित पत्रिका निरन्तर प्राप्त हो रही है। यह पत्रिका ज्ञान उपार्जन का बहुत अच्छा साधन है। सभी लेख ज्ञान से परिपूर्ण तथा प्रेरक हैं। इस पत्रिका से मैं ही लाभ नहीं उठाता, बल्कि मेरे कई साथी भी स्वाध्याय करके लाभान्वित होते हैं। यह पत्रिका-आर्य परिवारों तक ही सीमित न रहे, इसके अधिकाधिक प्रसार करने की पहली आवश्यकता है। इससे लोगों की अनेक भ्रान्तियों का भी निराकरण होगा। जैसे आर्य कौन होता है, जाति का आधार जन्म न होकर गुण कर्मानुसार होता है, धर्म क्या है ? ईश्वर एक है, उपासना किसकी और कैसे करें इत्यादि विषयों की जानकारी मिलने से स्वतः ही भ्रान्ति का निवारण होगा। **जी०एस० आर्य, C/o 59 A.P.O.**

आपके सम्पादकत्व में दयानन्द सन्देश में कई प्रकार की उत्तम सामग्री पढ़ने को मिल रही है। मई ९८ के अंक में आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार के लिए जो सुझाव दिये गये हैं वे वास्तव में बहुत अच्छे हैं, तदर्थ हार्दिक बधाई स्वीकार करें। सुझाव व्यावहारिक हैं, इनको व्यवहार में लाने से आर्यसमाज की प्रगति होगी।

रणजित् मुनि 'तन्मय' योगधाम, ज्वालापुर (हरिद्वार)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेद-प्रचार : कर्त्तव्य एवं व्यवस्था

वेदों में पुनरुद्धार के अत्यन्त महत्, दुरूह एवं यशस्वी भगीरथ प्रयास का सम्पूर्ण श्रेय महर्षि दयानन्द सरस्वती को ही जाता है। निबिड़ अन्धकार से ढके वेद को प्रत्यक्ष ज्ञानालोक में लाकर महर्षिवर ने जो कार्य किया उसके लिए पूरा भारतीय इतिहास उनका ऋणी रहेगा एवं वेद प्रेमी मानवता उनका सदा गुणगान करती रहेगी। **हम भारतीयों के मानस पटल पर एक अत्यन्त धुंधली एवं पथ भ्रान्त रेखा के समान स्थित वेदों की क्षीण स्मृति से विस्तृत रूप से उद्घाटित सूर्यालोक में परिवर्तित करके विश्व के विज्ञ-समुदाय के समक्ष उन्हें पुनः प्रतिष्ठापित करने का जो महान् व दिव्य कर्म महर्षि दयानन्द द्वारा किया गया वह वर्णनातीत है।** न केवल हम भारतीयों पर अपितु मनु पुत्र समाज पर की गई उनकी अनुकम्पा का प्रतिदान कभी नहीं दिया जा सकता। हम आप लोग जो दिव्य ईश्वरीय वागेश्वरी वेदवाणी के अध्ययन व प्रचार के लिए संकल्पयुक्त व कटिबद्ध हैं उन्हें सर्वप्रथम उन महर्षि श्रेष्ठ के प्रति हार्दिक कृतज्ञता-प्रकाशन करना चाहिए। **वेदप्रेमी वेदभक्तों को स्वामी दयानन्द के प्रति धन्यवाद से भर उठना चाहिए, उनके उपकार के प्रति सदा सचेत, क्षण-क्षण सज्ञान रहना चाहिए। उनके प्रति हमारी अपार कृतज्ञता का श्रेष्ठ प्रमाण होगा वेदों के प्रति हमारी अटूट प्रतिबद्धता जिसे हम वेदाध्ययन व प्रसार हित अपने तन, मन, धन व वचन-कर्म को समर्पित करके प्रमाणित कर सकते हैं।** उन महामानव के जैसे "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" की आग्रहपूर्ण अभीप्सा को स्वयं के भीतर जगा कर हम उन्हें अपना श्रद्धादान दे सकते हैं। इस संकल्प, इसे आग्रहपूर्ण अभीप्सा को प्रतिपल, प्रतिक्षण सिंचित, पोषित करते रहने का सबल प्रयास ही हमारी श्रद्धांजलि होगी उन महामना और उपकारी दिव्य पुरुष के प्रति।

महर्षि दयानन्द के बाद श्रीपाद दामोदर सातवलेकर प्रभृति अनेकों वेदानुसन्धानक रहे हैं और हैं परन्तु उन सबके वेदार्थ सुन्दर व उपयोगी होते हुए भी उनमें संकल्प की वह तीव्र ओजस्विता नहीं दिखाई देती जो महर्षि दयानन्द में है। साथ ही इन विद्वानों में बौद्धिक उच्चता होते हुए भी उनके वेदार्थों में योगाभ्यास से प्राप्त योगाभास व योग प्रसूत गूढ़ार्थ प्रस्तावक दृष्टि के प्रमाण या तो हैं ही नहीं या हैं भी तो अत्यल्प व विशृङ्खलित हैं। महर्षि दयानन्द के पश्चात् अनेकों वेदार्थ अनुसन्धानक प्रयास हुए हैं और हो रहे हैं उनमें आर्यसमाज के विद्वानों के प्रयास ही सर्वोपरि हैं।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका एवं सत्यार्थप्रकाश के पश्चात् वेदार्थ उद्घाटक श्रेष्ठ ग्रन्थ अस्तित्व में आए हैं तो वे हैं श्री अरविन्द के 'वेद-रहस्य' एवं 'अग्निमन्त्रमाला' नामक ग्रन्थद्वय। वेदों के प्रति असीम प्रेम व भक्ति से सरोबार श्री अरविन्द की वेदानुरागिता पढ़ते ही बनती है। बीस इक्कीस वर्ष के आयु से श्रेष्ठ साहित्यिक संरचना करने वाले

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

श्री अरविन्द अपनी आयु के अठहत्तर वर्ष तक साहित्य रचना करते रहे। अपने ३५ ग्रन्थों के विशाल साहित्य समुच्चय में वेदों का प्रसंग, पुष्टि व प्रमाण को बार-बार देते चलते हैं—**श्री अरविन्द। सीक्रेट ऑफ द वेदा एवं हिम टू द मिस्टिक फार्मर** के अतिरिक्त भी उनके प्रायः प्रत्येक ग्रन्थ में वेद का संदर्भ अवश्य ही आया है। उनके वेद-प्रेम प्रमाण के लिए उनके ग्रन्थ ही देखने चाहिए। फिर भी उनकी कुछ हीरक जाज्वल्य उत्कृष्ट वेदार्थक उद्घोषणाएं यहाँ उद्धृत करना समीचीन होगा :—**ब्रह्म के केवल सार-तत्त्व के विषय में ही नहीं, बल्कि उसकी अभिव्यक्ति के विषय में सत्य वेद ही है मत-मतान्तर से परे का सत्य। मेरा विश्वास है कि भारतवर्ष और विश्व का भविष्य वेदों के अन्वेषण और प्रयोग पर ही अवलम्बित है।**

पुनः शृणोमीममरण्यभूमौ वेदस्य घोषं हृदयामृतोत्तमसमसुज्ञानिना आश्रमगा मुनीनां कुल्येव पुंसां बहति प्रपूर्णा। एक बार फिर मैं वनों में वेद के स्वर को गुंजरित होते हुए सुन रहा हूँ जो हृदय के लिए अमृत समान है। यह मानव सरिता मुनियों के गम्भीर ज्ञानयुक्त आश्रम की ओर प्रवाहित हो रही है। श्री अरविन्द के ग्रन्थ वेद पर लिखे ग्रन्थों के पूरक व समन्वय कारक हैं। **महर्षि दयानन्द के बाद के भारतीय व पाश्चात्य वेदानुसन्धानों को भी उनके स्तर पर जांच-परख कर उन्हें भी दिशाओं के रूप में पहचानने की कोशिश की है।** श्री अरविन्द की योग-शुद्ध, अत्यन्त मर्मभेदी दृष्टि से वेदों को एक दिव्य गहनता व सर्वसमस्या समाधानक स्वरूप प्राप्त होता है।

वेद सम्बन्धी अनेकानेक विचारों, धारणाओं एवं मान्यताओं के पीछे छिपे रहस्यार्थों के अन्वेषण के लिए अनेक वेद-विचार ग्रन्थ पढ़ना समीचीन है। विज्ञानियों का कथन है कि चार सौ वर्ष की आयु तक वेदाध्ययन किया जाय तो भी वेदार्थ का सम्पूर्ण व आधिकारिक ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता। यह कथन कोरा अतिवाद नहीं है अपितु अस्तिवादियों के इस तर्क और सुदृढ़ युक्तिमत्ता का प्रस्तवन है कि अनन्त की प्रत्येक क्रिया, प्रक्रिया, निर्माण या प्रदान भी अनन्त है। असीम, अनन्त, सनातन परमात्मा की गीर्वाणी भी असीम, अनन्त और सनातन है। उसका अनन्त काल तक अनुशीलन मन्थन एवं निदिध्यासन किया जा सकता है और उनसे सदा ही नये से नये उपहार, रत्न, निर्देश व शिक्षा प्राप्त की जा सकती है। वेदों के मूलार्थ व गूढ़ार्थ पर अधिक ध्यान देना उचित है। रूढ़ार्थ पर सामान्य दृष्टि प्रक्षेपण पर्याप्त है। आप सबके लिए अज्ञात नहीं है फिर भी हम वेदाग्रसरण के लिए आग्रही, प्रतिबद्ध व कटिबद्ध हमारी विनम्र रूप से कार्यरत संस्था "श्री अरविन्द चेतना समाज" की ओर से कुछ सुझाव प्रस्तुत करना कालोपयुक्त एवं कर्त्तव्यनिष्ठ मानते हैं।

१. वेदों को मात्र श्रद्धाभाजन व पूज्य ग्रन्थ मानकर उनकी पूजा-अर्चना में ही न लगे रहकर, उनके निहितार्थ समझने का दृढ़ प्रयास करना व उनका अनुसरण करना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चाहिए।

२. निखिल ताप-निवारक भैषज्य के रूप में ब्रह्मज्ञान के दिव्य दान स्वरूप वेदों से अपने तन-मन के तापों से मुक्ति पाकर हरा-भरा व सार्थक जीवन जीने का प्रयास करना चाहिए।

३. इन उभयद्वय श्रेष्ठार्थों की सिद्धि हेतु वेदों का अनुशीलन अनेकों विद्वानों के अध्ययन के साथ योगवृत्ति के द्वारा स्वयं भी अर्थोद्घाटन का प्रयत्न करना चाहिए।

४. वेदों के बराबर किसी भी ग्रन्थ को स्थान देना अनुचित है। वेदों के अतिरिक्त कोई भी ग्रन्थ कितना भी श्रद्धेय व आस्थापात्र हो उसे वेदों के समकक्ष मानना भूल है। **सभी ग्रन्थ वक्ता या श्रोता की मति सीमा से बंधे होते हैं। वेद सीमाओं से बंधे नहीं हैं।**

५. वेदों के अर्थ योग शुद्ध व प्रभुभावान्वित हृदय एवम् आत्ममहत्त्वरहित व परमात्म महत्त्व पूरित मानस द्वारा ही समझे जा सकते हैं। बौद्धिक श्रेष्ठता व शब्द ज्ञान ही उत्तमता मात्र वेदार्थ उन्मेषण के निमित्त अत्यन्त हेय साधन हैं। बुद्धि विलास व शब्दजाल मात्र के द्वारा किए गए निम्न व हीन कोटि में अशुद्ध वेदार्थों के कारण ही परवर्त्ती काल में वेदों को परिहार्य, व्यतीतग्रन्थ, चुके हुए और असामयिक शब्द-समूह माना जाने लगा। **इस मान्यता वाले लोगों ने ही भारत को दुर्बल, विभ्रान्त एवं मरणोन्मुखी व निकृष्ट बना कर गुलामी का मार्ग प्रशस्त किया। ऐसे मूढ़धर्मानुयायीजन आज भी बहुत हैं। उनके वाग्जालों व पुष्पितां वाचं से बचना चाहिए।**

६. अब जबकि महर्षि दयानन्द, योगिराज श्री अरविन्द के नेत्रोन्मीलक ग्रन्थ तथा योग मन्थन विधि से सुप्राप्त उनके वेदार्थ उपलब्ध हैं तो अब तो वेद विषयक अपने विभ्रम व अनिश्चय को तिलाञ्जलि देकर इन महात्माओं के दृष्टिकोण से अपने जीवन को व्यवस्थित करना चाहिए।

भव्य ऋषि-मेला

प्रतिवर्ष की भाँति आना सागर तट पर इस वर्ष भी परोपकारिणी सभा का वार्षिक समारोह बड़े उत्साह के साथ ९, १०, ११ अक्टूबर १९९८ को मनाया जायेगा। इस अवसर पर आर्य जगत् मूर्धन्य, संन्यासी, विद्वान्, भजनोपदेशकों से उपदेशामृत का पान कर अवश्य लाभ उठायें। इस अवसर पर सामवेद पारायण महायज्ञ ९ अक्टूबर से प्रारम्भ होगा और अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द पीठ के अन्तर्गत वेदगोष्ठी का आयोजन भी किया गया है।

सचिव, परोपकारिणी सभा, अजमेर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साहित्य-समीक्षा

(राजवीर शास्त्री)

(१) यज्ञ और विज्ञान

लेखक—श्री डॉ० जगदीशप्रसाद जी, पूर्व प्राध्यापक रसायन विभाग, मेरठ कॉलिज

प्रकाशक—**वैदिक प्रकाशन,** एन०एच० १६, पल्लवपुरम् २ मेरठ

मूल्य—बीस रुपये मात्र

यह पुस्तक विद्वान् लेखक ने यज्ञ की वैज्ञानिकता समझाने के लिए लिखी है। भारतीय संस्कृति में यज्ञ का वही स्थान है जो शरीर में आत्मा का स्थान है। आधुनिक वैज्ञानिक भी यज्ञ का महत्त्व समझने लगे हैं। यज्ञ के सम्बन्ध में मध्यकाल में जो विकृतियाँ फैल गई थीं, उनका इस पुस्तक से निराकरण होकर यज्ञ के विषय में धार्मिक जगत् की श्रद्धा व आस्था बढ़ेगी। धर्म के तीन स्तम्भ माने जाते हैं "त्रयो धर्मस्तम्भाः यज्ञोऽध्ययनं दानं चेति।" ऐसी प्राचीन घोषणा ऐसी पुस्तकों के पढ़ने से सार्थक हो सकेगी। होम के द्वारा विविध रोगों का निवारण होने से लोक में सुख शान्ति बढ़ेगी। विद्वान् का परिश्रम श्लाघनीय है। पाठक इसे अपना कर विद्वान् का उत्साहवर्धन अवश्य करेंगे, ऐसी मुझे आशा है।

(२) पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी

लेखक—श्री डॉ० रामप्रकाश जी प्रोफेसर रसायन विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

प्रकाशक—**अनीता आर्ष प्रकाशन,** ५००/२, हलवाई हट्टा, पानीपत (हरियाणा)

मूल्य—पचास रुपये मात्र

प्रस्तुत पुस्तक में पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी की जीवनी है। जीवन के २६ वर्षों तक ही जीवित रहकर आपने जो अपना प्रभाव आर्य जगत् में छोड़ा है, वह यथार्थ में प्रशंसनीय है। मैंने इस को आद्योपान्त पढ़ा है। इसके पढ़ने से एक नई प्रेरणा मिलती है। विद्वान् लेखक ने जीवनी की प्रत्येक घटना को बहुत अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है। महर्षि दयानन्द के जीवन के अन्तिम दृश्य से तो नास्तिक गुरुदत्त आस्तिक तथा ऋषि का अनन्य भक्त बन गया। पाश्चात्य विद्वानों के मिथ्या आक्षेपों का सप्रमाण उत्तर देकर गुरुदत्त विद्यार्थी ने सबको चकित कर दिया। लाहौर का डी०ए०वी० कालेज तो आपका जीवित स्मारक है। ऋषि ग्रन्थों के पक्षधर होने से आप पाणिनि कृत अष्टाध्यायी को पढ़ाने के लिए जीवन भर संघर्ष करते रहे। माँस-भक्षण के आप घोर विरोधी थे। ईसाई मत की तरफ आकृष्ट उच्चवर्ग के लोगों को रोकने का आपने भागीरथ श्रम किया। कुशाग्रबुद्धि, प्रबुद्ध प्रवक्ता तथा प्रखर लेखक व सम्पादक पण्डित गुरुदत्त अपने समय में अद्वितीय ही रहे। विद्वान् लेखक ने उनके प्रति हार्दिक श्रद्धा के भाव संजोग कर इस ग्रन्थ को बड़े परिश्रम से लिखा है, एतदर्थ ये धन्यवाद के योग्य हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वैदिक राष्ट्रवाद

स्वामी वेदमुनि अध्यक्ष, वैदिक संस्थान नजीबाबाद

सृष्टि-कर्त्ता परमपिता परमात्मा ने जब सृष्टि को सृजा तो सृष्टि के सर्वोत्तम प्राणी अपनी सर्वोत्तम रचना मानव को इस सृष्टि की जानकारी तथा इसके प्रत्येक पदार्थ के यथायोग्य उपयोग के लिए उन पदार्थों के ज्ञान के साथ-साथ संसार में रहन-सहन और पारस्परिक व्यवहार का ज्ञान भी प्रदान किया। यदि ऐसा न किया होता तो सृष्टि के अन्य जन्तुओं की भाँति मानव भी केवल नरतनधारी जन्तु मात्र ही रह जाता, नरमनधारी अर्थात् मननशील विचारक बौद्धिक प्राणी नहीं बन पाता तथा प्राप्त ज्ञान की अभिवृद्धि द्वारा प्रगति करने में कदापि सफल नहीं हो सकता था।

मानव के स्वभाव की एक न्यूनता भी है और वह है अपनी आवश्यकता पूर्त्ति के प्रत्येक कार्य को स्वयं ही न कर पाना है। यही कारण है कि मानव अपनी आवश्यकताओं को दूसरे व्यक्तियों के माध्यम से पूर्ण करता है अतएव प्रत्येक मानव दूसरे मानवों पर आधारित या उनका आश्रित बनकर जीवन यापन करता है। इसका अर्थ यह है कि मानवी जीवन एकाकी नहीं अपितु संघीय जीवन है और इसी कारण से मानव को सामाजिक प्राणी कहा जाता है।

प्रत्येक क्षेत्र में रहने वाले मानव और मानव समाज की परिस्थितियाँ अपने-अपने क्षेत्रानुसार होने से उन्हें अपनी समस्याओं के हल के लिए व्यवस्थाएँ भी परिस्थिति अनुसार बनानी पड़ती हैं—बस यहीं से राष्ट्रवाद का जन्म होता है। यह राष्ट्रवाद किस प्रकार का हो ? एतद्विषयक विचार भी वेद में प्रभूत मात्रा में वर्णित हैं, उन्हीं का कुछ संक्षिप्त सा वर्णन व दिग्दर्शन आगे की पंक्तियों में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। यजुर्वेद का एक मन्त्र है—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना।। (२०। २५)

अर्थात् **यत्र** = जहाँ, जिस लोक, जिस देश में, **ब्रह्म च क्षत्रं च** = ब्रह्म और क्षत्र, ब्रह्म-ज्ञान और क्षातृत्व, ब्रह्म-शक्ति और क्षात्र-शक्ति, **सम्यञ्चौ** = ठीक प्रकार, सम्यक् रूपेण, व्यवस्थित ढंग से अर्थात् जहाँ-जहाँ, जितनी-जितनी, जैसी-जैसी आवश्यकता हो, **सह** = सहयोगपूर्वक, **चरतः** = गति करते हैं, व्यवहार में आते, व्यवहार में लाये जाते हैं, **तं लोकं** = वह लोक, वही देश, **पुण्यं** = पुण्य लोक, पवित्र देश, उत्तम राष्ट्र, **प्रज्ञेषं** = जाना जाता है, जाना जाने योग्य है, जानना चाहिये, **यत्र देवाः** = जहाँ विद्वान् तथा जहाँ के विद्वान्, **सह-अग्निना** = तेजपूर्वक रहते, क्षात्र-शक्ति द्वारा रक्षित हो तथा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वाभिमानपूर्वक रहते हों।

वेद किसी एक देश, किसी एक क्षेत्र तथा किसी एक समय, एक काल के लिए निर्देश नहीं करता अपितु वह तो सार्वकालिक और सार्वभौमिक है। वेद की व्यवस्थाएँ भी सार्वकालिक, सार्वभौमिक और सार्वदेशिक हैं। इस प्रकार संसार के प्रत्येक राष्ट्र को उन्नत होने पर उत्तम बने रहने के लिए वेद के उपर्युक्त मन्त्रानुसार ही वर्त्तना चाहिये।

राष्ट्र में ब्राह्मणों, अनुसन्धान-कर्त्ताओं और ब्रह्मवेत्ताओं, ब्रह्मज्ञानियों की परम आवश्यकता होती है। अनुसन्धान-कर्त्ता अपने अनुसन्धानों के द्वारा राष्ट्र को प्रत्येक क्षेत्र में विकसित कर उन्नति के सर्वोच्च शिखर तक ले जा सकते हैं और ब्रह्म ज्ञानी उन्नतावस्था प्राप्त राष्ट्र को पथ-भ्रष्ट होने से बचाने का प्रयत्न किया करते हैं। वह उसका सम्यक् मार्ग दर्शन कर उसे भौतिकता के चक्र में फँसने से बचाये रखने का कार्य करते हैं। ब्रह्मज्ञान की धारा लुप्त होने से राष्ट्र भौतिक भोगों में फँसकर प्रमाद तथा चरित्रहीनता की कीचड़ में फँस जाता है और ऐसी स्थिति में वह यही कहा करता है कि—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।।

अर्थात् मैं धर्म को जानता हूँ, परन्तु मेरी उसमें रुचि नहीं है, मैं अधर्म को भी जानता हूँ किन्तु उससे मेरा छुटकारा नहीं। मुझे तो ऐसा लगता है कि किसी अज्ञात दैवी शक्ति के द्वारा मेरे हृदय में स्थित होकर जिस प्रकार मेरी नियुक्ति कर दी गयी है, वैसे ही मैं करता हूँ। दुर्योधन की इस उक्ति के अनुसार आचरण करने का तो वही परिणाम होता है, जो महाभारत युद्ध के पश्चात् भारत देश तथा आर्य जाति का हुआ, जो अभी तक भी पतन के गर्भ से नहीं निकल पायी है।

ब्रह्मज्ञानी तेजस्वी भी होने चाहिये अपितु 'सहाग्निना"। आजकल के जैसे बुद्धिजीवी नहीं, जो बुद्धि को बेचकर जीते हैं, जिनमें तेज—ब्रह्मतेज लेश मात्र भी नहीं है। बुद्धि बेचकर जीने वाले में तेजस्विता, ब्रह्मतेज सम्भव ही नहीं है।

दूसरी आवश्यकता होती है, राष्ट्र को उन्नत और उत्तम बनाये रखने के लिए क्षात्र-शक्ति की। जहाँ ब्राह्म बल से काम न चले, वहाँ क्षात्र बल का प्रयोग कार्य करता है। ब्राह्मबल सर्वोच्च होते हुए भी सार्वकालिक नहीं होता। शठों पर दुष्टों पर ब्राह्मबल, ब्राह्म-शक्ति, सद् ज्ञान और सदुपदेश जब काम न करें तो शस्त्र बल का प्रयोग अनिवार्य हो जाता है। **'शठे शाठ्यं समाचरेत्'** शठ के प्रति शठता ही वर्त्तनी चाहिये

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।
पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्द्धनम्।।

जिस प्रकार मूर्खों पर उपदेश का विपरीत प्रभाव होता है, वह उसे सुनकर शान्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नहीं अपितु क्रोधित हो उठते हैं तथा जिस प्रकार सर्प में दुग्धपान करके भी विष ही बढ़ता है। ऐसी स्थिति में दण्ड ही धर्म होता है। **'दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः'** एतदर्थमेव क्षात्र-शक्ति की भी परम आवश्यकता है और क्षात्र-शक्ति अर्थात् शासन के ऊपर भी ब्रह्मशक्ति का होना अत्यावश्यक है अर्थात् शासन-सत्ता पर ब्राह्म-शक्ति का नियन्त्रण रहना परमावश्यक है। तभी सन्तुलन बना रह सकता है। संवैधानिक व्यवस्था इस प्रकार से बनायी जानी चाहिये कि ब्रह्मशक्ति और क्षात्रशक्ति का सम्यक् प्रकारेण व्यवहार होकर राष्ट्र समृद्ध सुरक्षित तथा सुनियन्त्रित रहे। महाभारत से इसका एक उदाहरण भी प्रस्तुत किया जाता है।

अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतः संशरं धनुः।
इदं ब्राह्मं इदं क्षात्रं शास्त्रादपि शरादपि।।

मेरे आगे चारों वेद हैं, यह ठीक है किन्तु मेरी पीठ पर बाणों सहित धनुष भी तो है। यह आगे मेरी ब्रह्मविद्या है तो इधर पीठ पर क्षत्रशक्ति भी है। मैं शस्त्र और शास्त्र दोनों से सन्नद्ध और समुद्यत हूँ। राष्ट्रहितार्थ दोनों विद्याओं से युक्त जनों की आवश्यकता होती है। शास्त्र चिन्तन भी चलता रहे तथा शस्त्र-व्यवस्था भी बनी रहे। **शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्त्तते।** शस्त्रों से राष्ट्र रक्षित रहे तथा शास्त्र-चिन्तन चलता रहे। शस्त्रों द्वारा रक्षित राष्ट्र में शास्त्र-चिन्तन चलता है।

इस व्यवस्था को बनाये रखने और संचालित करने के लिए आवश्यकता होती है शासन-व्यवस्था की। अतएव वेद ने उसका भी सुन्दर वर्णन-विवेचन प्रस्तुत कर दिया है, परन्तु शासन-व्यवस्था के संचालनार्थ शासक कैसा होना चाहिये? यह भी हम यहाँ वेद के ही शब्दों में प्रस्तुत कर देना उचित समझते हैं और उससे भी पूर्व हम चाहते हैं कि जनता जिन लोगों में से शासक निर्वाचित करे, वह किस योग्यता के हों अर्थात् राष्ट्र को नेतृत्व देने के लिए किन योग्यताओं की आवश्यकता है तथा किन योग्यताओं से युक्त व्यक्ति राष्ट्रनेता बनना चाहिये ? इसके लिए यजुर्वेद अध्याय १५ के २३ वें मन्त्र को उद्धृत कर रहे हैं।

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः।
दिवि मूर्धानं दधि स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम्।।

मन्त्र के द्वितीय पाद में 'अग्नि' शब्द का सम्बोधन का रूप 'अग्ने' आया है। 'अग्निः अग्रणीर्भवति।' अग्नि का अर्थ है आगे चलने वाला, आगे ले चलने वाला, मार्गदर्शक, पथ-प्रदर्शक, जो जनता को अपने पीछे ले चले अर्थात् जनता को मार्ग दिखाये, उसका मार्गदर्शन करे। 'अग्नि' शब्द के तीन अर्थ हैं—ज्ञान, गमन और प्राप्ति। जो ज्ञानवान् हो, गमनशील हो—आगे बढ़ने वाला, प्रगति करने वाला तथा प्राप्ति अर्थात् उपलब्धि करने वाला हो तो अग्नि होता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेद का कथन है कि हे अग्ने ! तू **'यज्ञस्य रजसश्च'** संसार यज्ञ का **'नेता-भुवः'** नेता होगा **'यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः'** जब कल्याणकारी नीतियों से युक्त हो जायेगा। नेता वास्तव में वही होता है जो जनता के, राष्ट्रीय जनता के हित की नीतियों से युक्त हो।

कल्याणकारी, राष्ट्र हितकारिणी नीतियों से युक्त होने के लिए आवश्यकता है, राष्ट्रहित की योग्यता को प्राप्त कर लेना अर्थात् राष्ट्रहित किन कार्यों से होगा तथा उन कार्यों को सिद्ध करने के लिए किन प्रकारों नीतियों को अपनाना होगा, इसका ज्ञान प्राप्त किये बिना, इसे समझे बिना कोई भी वास्तविक अर्थों में नेता नहीं हो सकता और यह सब समझने के लिए **(दिवि मूर्धानं)** अपनी मूर्धा को मस्तिष्क को द्यौ लोक, ज्ञानालोक में धारण कर लेगा।

जब तक सामाजिक तथा राष्ट्रीय समस्याओं को समझने की योग्यता नहीं होगी, तब तक नेतृत्व का गुण हो ही नहीं सकता और जब इस प्रकार की योग्यता आ जायेगी, तब **(स्वर्षां जिह्वां चकृषे हव्यवाहम्)** तब अपनी जिह्वा को उत्तम गति वाली बनाकर राष्ट्र की जनता को उपभोक्ता सामग्री प्राप्त कराने के सूत्र दे सकेगा, यथायोग्य भोग्य सामग्री प्राप्त कराने वाले विचार व्यक्त कर पायेगा।

उपर्युक्त प्रकार के नेताओं को ही शासनाधिकार प्राप्त होना चाहिये। राष्ट्र की जनता द्वारा शासन-सत्ता पर इसी प्रकार के नेताओं को पहुँचाना चाहिये, ऐसे व्यक्ति ही शासक होने के अधिकारी हैं। अथर्ववेद १। २१। १ में शासक के विषय में कहा गया है—

स्वस्तिदा विशांपतिर्वृत्रहा विमृधो वशी।
वृषेन्दु पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः।।

'विशांपतिः' प्रजापति, प्रजापालक—उसे चाहे राजा कहा जाये या शासक **'स्वस्तिदा'** कल्याण का दाता हो। जो प्रजा का कल्याण नहीं कर सकता, जिसके राज्य में प्रजा दुःखी हो, सन्तप्त हो, उसे उपभोक्ता वस्तुएँ और उन में भी न्यूनातिन्यून अनिवार्य आवश्यकताओं की वस्तुओं के लिए भी प्रजा दुःखी रहे। दुष्टों, दुराचारियों, लुटेरों के द्वारा सतायी जाती हो, उत्पीड़ित की जाती हो, वह शासक नहीं। वह तो तुलसीदास जी के शब्दों में—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवश नरक अधिकारी।।

जिसके राज्य में प्रजा पीड़ित रहे, वह राजा तो नरक का अधिकारी होता है, पारमात्मा की न्याय-व्यवस्था में भी और उत्पीड़ित जनता के द्वारा भी विद्रोह पर उतारू होकर जेल यातना देने अथवा घोर यन्त्रणा देकर मार डालने के रूप में नरक भोगता है,

(शेष पृष्ठ ७१ पर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पाप-पुण्य मीमांसा

यशपाल आर्यबन्धु, आर्य निवास, चन्द्रनगर, मुरादाबाद २४४०३२

मनुष्य एक कर्मशील प्राणी है। बिना कार्य किये वह क्षणभर भी नहीं रह सकता। कहा भी है—**नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।** महर्षि दयानन्द का भी यही कहना है। ऋग्वेद मन्त्र १।६८।३ का भाष्य करते हुए महर्षि लिखते हैं—"कोई मनुष्य कर्म के बिना क्षण भर भी स्थित नहीं हो सकता।"

कर्म दो प्रकार के होते हैं। (१) विहित कर्म (२) निषिद्ध कर्म। वेदादि सत्य शास्त्रों में जिन-जिन कर्मों को करने का विधान किया गया है अथवा आज्ञा दी गई है, वे सब विहित कर्म हैं और जिन कर्मों के करने का निषेध किया गया है, वे सब निषिद्ध कर्म हैं। विहित कर्मों का करना पुण्य और उनका त्याग पाप है। इसी प्रकार निषिद्ध कर्मों का करना ईश्वराज्ञा उल्लंघन होने से पाप तथा उनका न करना पुण्य की कोटि में आता है। मनुष्यों को पाप का फल दुःख एवं पुण्य का फल सुख के रूप में मिलता है। यह भी जान लें कि **"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्"** अर्थात् किये हुए शुभ अथवा अशुभ कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। महर्षि का सुस्पष्ट कथन है कि —"पाप-पुण्य का फल बिना भोगे छुटकारा नहीं मिलता अर्थात् पापों को भोगना ही पड़ता है।" (पूना प्रवचन—छठा प्रवचन) **"अवश्यमेव कर्माणि भोक्तव्यानीति निश्चयः।"** आदि अनेक शास्त्र-वचन इसी बात की पुष्टि करते हैं। कर्मफल भोगने की अवश्यम्भाविता ही वह कारण है जिसके चलते मनुष्यों द्वारा दुःख की कामना न करने पर भी उन्हें प्रायः दुःख भोगना ही पड़ता है क्योंकि कारण के रहते हुए कार्य का होना भी आवश्यक है। अतः यदि दुःखों से बचना है तो दुःखों के कारण को ही समाप्त करना होगा क्योंकि **छिन्ने मूले वृक्षो नश्यति तथा पापे क्षीणे दुःखं नश्यति।**

पाप क्या है ? और पुण्य क्या है ?

पाप के लक्षण शास्त्रकार इस प्रकार से करते हैं—**अनुष्ठानं निषिद्धस्य त्यागो विहितकर्मणः। नृणां जनयतः पापं क्लेशशोकभयप्रदम्।।** अर्थात् जो काम नहीं करने चाहिये उन निषिद्ध कर्मों को करना और जो काम करने चाहिये उन विहित कर्मों का त्याग पाप है, जिसका फल क्लेश, शोक और भयप्रद होता है। और भी—**"पान्ति रक्षन्ति आत्मानम् अस्मादिति पापमधर्मो वा।"** अर्थात् जिससे दूर रह कर आत्मा की रक्षा की जाती है अथवा जिससे बचाकर आत्मा को रखा जाता है, वह पाप अथवा अधर्म है। **"पवते पवित्रो भवति येन तत् पुण्यं सुकृतो धर्मो वा।"** अर्थात् जिससे आत्मा पवित्र हो, वह पुण्य, सुकृत अथवा धर्म है। महर्षि आर्योद्देश्यरत्नमाला में लिखते हैं—"पुण्य जिसका

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वरूप विद्या आदि शुभ गुणों का दान और सत्यभाषण आदि सत्याचार का करना है, उसको पुण्य कहते हैं। पाप-जो पुण्य से उल्टा और मिथ्याभाषण आदि करना है, उसको पाप कहते हैं।"

तीन प्रकार के पाप

पाप तीन प्रकार के होते हैं। (१) शारीरिक (२) वाचिक, (३) मानसिक।

(१) शारीरिक पाप–"शरीरेण प्रवर्त्तमानः हिंसास्तेयप्रतिषिद्धमैथुनानि।" अर्थात्–हिंसा, चोरी और निषिद्ध मैथुन शारीरिक पाप हैं।

(२) वाणी के पाप–"वाचानृतपरुषसूचना असम्बद्धानि।" अर्थात् मिथ्या बोलना, कठोर बोलना, चुगली और वृथा बोलना वाणी के पाप हैं।

(३) मानसिक पाप–"मनसा परद्रोहः परद्रव्याभीप्सा नास्तिक्यं चेति, प्रवृत्ति-रघमयी।" मन में दूसरों के प्रति कुत्सित भावना, दूसरे के धन का हरण करने की आकांक्षा औंर नास्तिकता मानसिक पाप हैं। इन तीनों पापों से अधर्म में प्रवृत्ति होती है।

मनुष्य पाप क्यों करता है ?

कर्तृत्व जीव का स्वाभाविक गुण है, परन्तु कर्म करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है। जीव स्वभाव से अल्पज्ञ तथा राग-द्वेषयुक्त है। इन्हीं राग-द्वेष और मिथ्या ज्ञानादि दोषों के कारण मनुष्य पाप कर्म की ओर प्रवृत्त हो जाता है। दूसरे प्रत्येक कर्म किये जा चुकने के पश्चात् स्मृति स्वरूप अथवा संस्कार का प्रभाव रूप अपना अभ्यासांश छोड़ जाता है, जिसे वासना कहते हैं। चित्त में विद्यमान यही वासनाएँ पाप की ओर प्रवृत्त करती रहती हैं। महर्षि दयानन्द पाप वासना को स्वतन्त्रता का विकार मानते हैं। पूना के छठे प्रवचन में वे कहते हैं कि–"अब कोई-कोई ऐसी भी शंका करे कि मनुष्य को पाप-वासना ही क्यों हुई ? तो उसका इतना ही समाधान है कि परमात्मा ने मनुष्यों को स्वतन्त्रता दी है और उस स्वतन्त्रता के जो-जो परिणाम होंगे, उन्हें भी स्वीकार करना चाहिए। सुख के सब सामान होने पर भी यदि स्वतन्त्रता नहीं तो वह स्थिति दुःख मिश्रित स्वतन्त्रता होकर अति दुःसह होती है। तब पाप-वासना होती है। यह अपनी स्वतन्त्रता का विकार है, इसके लिए ईश्वर पर दोष नहीं लगा सकते।" महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश के नवम समुल्लास में सत्त्व, रजस, तमस् रूपी निज त्रिगुणात्मक प्रकृति से प्रभावित होकर पाप-पुण्य आदि कर्म करने की बात भी कही है। साथ ही किसी तथाकथित शैतान आदि के बहकाने पर या ईश्वर के इशारे पर पाप करने की मिथ्या धारणाओं का परी जोर से खण्डन किया है।

आवश्यकता इस बात की है कि हम पाप और पुण्य के यथार्थ स्वरूप को समझें और समझ कर पाप रूप कर्म से बचें तभी हम दुःखों से बच सकेंगे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेद-प्रचार और आर्यसमाज

डॉ० महेश विद्यालंकार, दिल्ली

ऋषिवर देव दयानन्द का इस संसार में आगमन वैदिक धर्म का पुनरुद्धार, वेद-प्रचार तथा जीवन और जगत् में व्याप्त मिथ्या अज्ञान, ढोंग, पाखण्ड, गुरुडम, अन्धविश्वास आदि के विनाश के लिए हुआ था। उनका आना इस जगत् को वरदान सिद्ध हुआ। वे सत्य सनातन वैदिक धर्म के प्रचार एवं प्रसार के लिए आजीवन विषपायी रहे। अनेक बाधाओं, कठिनाइयों तथा संघर्षों के झेलते हुए सत्य के शोधक, सत्यवक्ता और सत्य पर शहीद हो गए। उन्होंने जो अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व के योगदान से संसार में अपनी पहचान छोड़ी है। उसके आगे युग-युग तक इतिहास नतमस्तक रहेगा। वह महामानव अपने में हर दृष्टि से निराला और अकेला था। वह हिमालय की चोटी पर अपनी खुशबू, रंगत और आकर्षण से अकेला खड़ा नजर आता है। आर्यसमाज उस युगपुरुष का जीवन्त स्मारक है। वेद-प्रचार इस संगठन का मुख्य उद्देश्य है।

वेद परम्परा की रक्षा, पठन-पाठन, प्रचार-प्रसार का दायित्व आर्यसमाज को वसीयत में मिला है। "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।" ईश्वरीय ज्ञान तथा स्वतः प्रमाण हैं। वेद परमात्मा का उपदेश आदेश एवं सन्देश हैं। सब के हैं, सब के लिए हैं, और सब को पढ़ने व सुनने का अधिकार है। वेद ज्ञान, सार्वभौमिक, सार्वकालिक, सार्वदेशिक और सार्वजनिक है। इसका चिन्तन और सन्देश प्राणीमात्र के लिए है। वेद मानव जीवन की आचार संहिता हैं। वेद सुखी शान्त एवं आनन्दमय जीवन जीने की कला सिखाते हैं। दुनिया में हम रोते हुए आए हैं। हँसते हुए कैसे जायें ? जगत् में रहते हुए कैसे जीयें ? हमारा क्या कर्त्तव्य, उद्देश्य और जीवन प्रयोजन है ? इहलोक तथा परलोक को कैसे सुधारें ? धर्म, अर्थ, कामं मोक्ष की प्राप्ति करके प्रभु-सान्निध्य कैसे प्राप्त हो ? ऐसी अनेक बातों का वेद-ज्ञान सीधा, सच्चा एवं सरल मार्ग बताता है। वेद मार्ग ही मनुष्य को भटकन, उलझन, तनाव, चिन्ताओं, दुःखों समस्याओं आदि से सच्चे अर्थ में निकाल सकता है। वेद-ज्ञान द्वारा दर्शित मार्ग ही प्रभु का सत्यमार्ग है। नाना पन्थ, सम्प्रदायों, गुरुओं, महन्तों आदि के मार्ग ढोंग पाखण्ड, अन्धविश्वास आदि से भरे हुए हैं। वहाँ शोषण और व्यक्तिपूजा की प्रधानता है। वैदिक धर्म में प्रभु-पूजा, कर्त्तव्यबोध तथा कर्मशीलता पर बल दिया जाता है।

वेद-पथ मनुष्य को संसार से भागने के लिए नहीं कहता है। उनका उपदेश है—भागो नहीं, पर त्यागपूर्वक भोगो, ज्ञानपूर्वक, नियमपूर्वक और त्यागपूर्वक इस संसार को भोगते हुए जीवन लक्ष्य की ओर धीरे-धीरे बढ़ते चलो। वह लक्ष्य है—प्रभु-प्राप्ति। इस

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्राप्ति में जो सहायक बने, उसे साथ लेते चलो, जो विघ्न-बाधा बने उसे छोड़ते चलो। वेद कहता है—सब जीवों का पिता परमेश्वर है। सब जीव प्रभु की सन्तानें हैं। सब जीवों के साथ हमारा बन्धुत्व का सम्बन्ध है। फिर मारकाट किसलिए ? स्वयं भी जीओ और दूसरों को भी जीने दो। एक नहीं, अनेक शिक्षाएं और उपदेश वेदों में विद्यमान हैं। जो कि आज भूले-भटके मानव एवं जगत् को जीवन-दृष्टि दे सकते हैं। विश्वशान्ति तथा विश्वबन्धुत्व का स्थायी और व्यावहारिक समाधान खोजना है तो संसार को वेदों की शरण में आना होगा। **''वसुधैव कुटुम्बकम्', सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु, मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षामहे।''** आदि उदात्त जीवन्त सन्देश वेदों में विद्यमान हैं। ऐसे अमर विचारों और भावों में ही आज की घायल मानवता राहत की श्वास ले सकती है, अन्यथा विनाश-महाविनाश के बादल तेजी से घिरते जा रहे हैं ?

मानवता के पुजारी ऋषि दयानन्द, इसी वेदविद्या के प्रचार और प्रसार का स्वप्न लेकर आये थे। उनके अधूरे स्वप्न का दायित्व आर्यसमाज के ऊपर है। दुःख और दुर्भाग्य है कि आज आर्यसमाज में सच्चे अर्थों में वेद-विचार एवं वेदरक्षा घट रही है।। आर्यसमाज अपने मूल उद्देश्य, स्वरूप, परम्परा, सिद्धान्त आदि से खिसकने लगा है ? वह भी औरों की तरह ईंट, पत्थर, भवन, स्कूल, दुकानें, बारातघर आदि में तेजी से फँसता जा रहा है? इन्हीं के कारण झगड़े, विवाद व पदलोलुपता बढ़ रही है। वेद-प्रचार के घटने से महन्त, महाराज, मूर्तिपूजा, गुरु, पाखण्ड, गुरुडम, अन्धविश्वास आदि भी बढ़ रहा है। वेदज्ञान वैचारिक दृष्टि देता है। विचारों में परिवर्तन की धारा-प्रवाहित होती है। जिससे मानव असत्य, अधर्म एवं पाप से अलग रहता है। आर्यसमाज ने जागते रहो ! की भूमिका को निभाया। किन्तु.... वह आज स्वयं वेदप्रचार के पथ से भटक गया है। जिन बातों का ऋषि ने विरोध किया था, वही बातें हम सब करने लगे हैं, दूसरी विचारधारा के व्यक्ति और आर्यसमाजी व्यक्ति में अब कोई मौलिक अन्तर नजर नहीं आता ?

हम अपनी पहचान खो रहे हैं ? अपनी साख को गिरा रहे हैं ? इसी कारण आज धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में आर्यसमाज का महत्त्व, स्थान व मूल्यांकन नहीं हो रहा है ? आर्य विचारधारा के अनुयायी घट रहे हैं ? पुराने व्यक्ति तेजी से जा रहे हैं ? नये बनाये नहीं जा रहे हैं ? नये बनाने की दिशा में सोच, विचार एवं ठोस प्रयास नहीं हो रहे हैं ? जो दिखाई दे रहा है, वहाँ पैसा बटोरने का साधन मात्र हो रहा है। गत दिनों वेदप्रचार के नाम पर कुछ लोगों ने भोली-भाली, भावुक, अनजान जनता से लाखों रुपये का बैंक बैलेंस बना लिया ? ऐसे दिखावटी, बनावटी फर्जी, विज्ञापनबाजी आदि से वेद-प्रचार और आर्यसमाज का भला नहीं होने वाला है ? ऐसे लोगों से आर्यजनता को सावधान होना चाहिए।

आर्यसमाज बड़ी तेजी से व्यापारिक सोच की ओर बढ़ रहा है। वेद-प्रचार घाटे का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सौदा है। घाटा कोई नहीं उठाना चाहता है। इसलिए वेद-प्रचार सभाओं, संगठनों, संस्थाओं और समाज मन्दिरों से खत्म हो रहा है। पहले सभाओं के पास उपदेशक, विद्वान्, भजनोपदेशक होते थे, आज कहाँ हैं ? क्योंकि अधिकारियों की सोच हो रही है—स्कूल, दूकान, बारातघर खोलो। आमदनी बढ़ेगी। जनता के पास जाने की जरूरत ही नहीं होगी? इसी आमदनी के कारण पद, अधिकार सुख, मान माला हैं। कोई पद से हटना नहीं चाहता है ? जगह-जगह झगड़े, समस्याएँ उलझनें हैं ? जो शक्ति, समय, धन तथा सोच वेद-प्रचार और ऋषि-मिशन को आगे बढ़ाने में लगनी चाहिए थी। जो आर्यसमाज की शक्ति संसार में बढ़ते, अन्धविश्वास, अवतारवाद, मूर्तिपूजा, गुरु, महन्तों, ढोंग, पाखण्ड आदि के विरोध में लगनी चाहिए थी ? वह शक्ति आपसी पदों, अंहकार, स्वार्थ आदि में व्यर्थ जा रही है ? इसी का परिणाम है कि आज गैर आर्यसमाजी बड़ी तेजी से संस्थाओं, मन्दिरों, सभाओं आदि पर गिद्धदृष्टि से कब्जे करते जा रहे हैं ? यदि आर्यसमाज न संभला तो वह दिन दूर नहीं, जब ऋषि-भक्त, आर्यजन बाहर होंगे और धूर्त, भ्रष्ट, चतुर, चालाक संस्थाओं पर हावी होंगे ? कुछ जगह तो हो भी गए हैं?

पैसा इकट्ठा करने की होड़ ने आर्यसमाज की सभी संस्थाओं मन्दिरों, अधिकारियों, विद्वान्नों आदि को मूल से हिला दिया है ? जिन मन्दिरों में वेदाध्यायन (वेदाध्ययन) शालाएँ होनी चाहिए थीं ? जहाँ से वेद-पाठ की मधुर ध्वनि आनी चाहिए थी। जहाँ की सात्त्विकता, पवित्रता, स्वच्छता एवं धार्मिकता से व्यक्ति शान्ति, एकाग्रता व प्रसन्नता अनुभव करता। जहाँ के आदर्शों से व्यक्ति आकर्षित होता। वहाँ चुराई, उठाई, भगाई, फुसलाई और बहकाई लड़कियों के प्रेम-विवाह हो रहे हैं। यज्ञवेदी पर जूते, सिगरेट, अश्लील बोलचाल हो रही है ? कई समाज-मन्दिरों की पहचान युवापीढ़ी में बन रही है, जहाँ सभी तरह के प्रेम विवाह कराये जाते हैं ? लग्नघर, शादी बाड़ी घर आदि। दिल्ली की एक आर्यसमाज का दुर्भाग्य फूटा। शादी के लिए हाल किराये पर दे दिया। शादी में मनचले युवकों ने शराब पी। हाल में ऋषि दयानन्द का चित्र टंगा हुआ था। एक पागल शराब के प्याले से छीटें उठाता हुआ, ऋषि के चित्र पर छिटकने लगा। बाबा ! आज तो तू भी अपना मुँह झूठा कर ले ? इससे बढ़कर ऋषि-भक्तों और वैदिक धर्मी लोगों का पतन और कलंक क्या होगा। सच तो यह है कि हमीं ऋषि के हत्यारे हो रहे हैं ? हमीं ऋषि के अस्तित्व, स्वरूप और सिद्धान्तों को स्वार्थों के कारण मिटा रहे हैं ? सिद्धान्तों की धज्जियाँ उड़ा रहे हैं ?

आर्यो ? उठो, जागो ! अपने और आर्यसमाज को संभालो ! बहुत हो चुके हैं—झगड़े, विवाद और मुकद्दमे ? अब तो होश करो ? ऋषि की आत्मा जहाँ होगी, वहीं हमारे स्वार्थों, पदलिप्सा, विवादों, आचरणहीनता, नास्तिकता आदि पर आँसू बहाती होगी। आर्यसमाज बनाया किसलिए था ? चल किधर पड़ा ? वेद प्रचार की जगह अपना प्रचार और स्वार्थ हावी हो गया ? सेवा के पदों पर भी मुकद्दमेबाजी बैठकर छोड़ने का नाम नहीं?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जो संगठन सबका मार्गदर्शक था। जो सबकी शुद्धि करता था; आज उसे स्वयम् अपनी शुद्धि की जरूरत हो रही है ? इन्हीं कारणों से संस्थाएं, संगठन, सभाएं आदि चौपट हो रही हैं ? ईमानदार, चरित्रवान्, दृढ़ता और कट्टरता वाले, संभालने वाले व्यक्ति नहीं मिल पा रहे हैं ? ऐसी विकट, भयावह परिस्थिति में आर्यो! एक ही रास्ता है—आओ मिल-बैठकर, वेद-प्रचार सप्ताह में आत्मचिन्तन करें। संकल्प तथा व्रत लें, अपने स्वार्थ, अहंकार तथा पद-लिप्सा को छोड़कर ऋषि मिशन के लिए कार्य करना है। वेद-प्रचार को ही आर्यसमाज का सर्वोपरि उद्देश्य रखना है। इसके लिए व्यक्ति, वातावरण, भावना और साधन बनाने हैं। निश्चित रूप से पुनः आर्यसमाज अपनी खोई मान, प्रतिष्ठा, गौरव आदि को प्राप्त कर लेगा। मात्र संगठित, मिलकर सहयोगभाव से करने वा चलने की बात है। यही वेद का संगठन सूक्त पुकार-पुकार कर कह रहा है।

(६६वें पृष्ठ का शेष)

एतदर्थ शासक को वास्तविक अर्थों में प्रजा का पालक = रक्षक, कल्याण प्रदाता और **(वृत्रहा विमृधो वशी)** दुष्टों, डाकुओं, दुष्कर्माओं का हनन करने वाला—विरोधियों, शत्रुओं को मिटा डालने वाला अर्थात् जो लोग देश के शत्रु हों, विरोधी हों—फिर चाहे वह देश में रहते हों या विदेशी हों, उनका हनन करने वाला हो और प्रजाओं को वश में रखने वाला हो। **(सोमपा अभयंकरः)** वह शान्तिदायक-रक्षक हो तथा प्रजा के लिए अभयंकर हो।

मन्त्र के तीसरे वाक्य में कहा गया है। **'वृषः इन्द्रः पुर एतु'** महा बलवान् और वीर हमारे आगे-आगे चले। प्रजा उपर्युक्त प्रकार के शासक के पीछे चलती है, उसका अनुगमन और अनुसरण करती है, वह उसकी बनायी व्यवस्थाओं, विधियों का पालन करती है। अथर्ववेद ३। ४। २ मन्त्र में कहा गया है—

'त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्चदेवीः'।

'इमाः पञ्च प्रदिशः देवी विशः' यह पाँचों दिशाओं (चार दिशाएँ और मध्य क्षेत्र) में रहने वाली बुद्धिमान् प्रजाएँ **'त्वां राज्याय वृणताम्'** तुझे राज्य के लिए, शासन करने, शासन व्यवस्था बनाये रखने के लिए वरण करती हैं, चुनती हैं। मन्त्र में यह भी स्पष्ट कर दिया है कि शासक प्रजा द्वारा निर्वाचित होना चाहिये।

वेद में राष्ट्रवाद सम्बन्धी इतने ही नहीं अपितु अनेकानेक मन्त्र तथा बहुत से स्थल हैं किन्तु विस्तार भय से इस लेख में इङ्गित स्वरूप यह थोड़े से उद्धरण ही प्रस्तुत किये गये हैं। इन्हीं से विज्ञ पाठक बहुत कुछ समझ लेंगे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शिखा-सूत्र की रक्षा का पर्व तथा वेदप्रचार सप्ताह

—मनुदेव 'अभय' विद्यावाचस्पति,
अ/१३, सुदामा नगर, इन्दौर-४५२००९ (मध्यप्रदेश)

वे नर-नारी बड़े सौभाग्यशाली हैं, जिन्होंने न केवल वेद देखे अपितु पढ़कर उसके ज्ञान का आनन्द प्राप्त किया है। ऋग्वेद के अनुसार वेद पढ़ने व जानने के पश्चात् भी जो आस्तिक नहीं बना, ईश्वरोपासक नहीं बना, ऐसे व्यक्ति का हित वेद की ऋचाएँ भी नहीं कर सकतीं। वेद विश्व का वह मौलिक ज्ञान का भण्डार है, जिसमें से धर्म-विज्ञान, समाज-विज्ञान तथा आधुनिक विज्ञान के प्रकाश की किरणें प्रस्फुटित हुई हैं। वेद में विविध ज्ञान-विज्ञान सूत्रों में विद्यमान है तथा समय-समय पर वैदिक ऋषियों ने अपने तपोबल और समाधि अवस्था में उनका दर्शन किया है। यह बार-बार उल्लेखित तथा प्रचारित किया जा चुका है कि वेद मन्त्रों के रचयिता वैदिक-ऋषि नहीं, अपितु वैदिक ऋषिगण तो मन्त्र-द्रष्टा हैं। वेद के सम्बन्ध में दूसरी बात ध्यान रखने योग्य है कि वेद संस्कृत (भाषा) में नहीं हैं। वेद तो वैदिक-संस्कृत में हैं और इसी वैदिक संस्कृत से सम्प्रति लौकिक संस्कृत की उत्पत्ति तथा विकास हुआ है। यही लौकिक संस्कृत विश्व की समस्त भाषाओं की जननी है।

प्रायः १-१।। हजार वर्ष तक सतत पराधीनता के पश्चात् देश को मात्र राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है। साथ ही, दुर्दैव-वश स्वतन्त्रता के शुभ अवसर पर एक अमंगलपूर्ण घटना यह भी हुई कि देश खण्डित रूप में मिला। मानो राष्ट्र-पुरुष की दोनों विशाल "आजानु" भुजाएँ किसी ने काट दी हों। देशवासियों ने राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिए 'खण्डित भारत' को भी स्वीकार किया। विगत ५० वर्षों से हम इस स्वराज को "अराज्य" बनाने की दिशा में अग्रसर होने में प्रयत्नशील हैं।

देश की भौतिक उन्नति के लिए नौंवी पंचवर्षीय योजना की तैयारी हो रही है, किन्तु भारतीयों को भारतीय-परिवेश के अनुसार उनका, भारतीयकरण के लिए कोई कार्य नहीं हुआ। इस देश का आध्यात्मिक-धरातल 'वेद' पर ही आश्रित है। मनुष्य के वैदिकीकरण के लिए उनका भारतीय-करण होना प्राथमिक कार्य होना चाहिए। किन्तु वेद और वैदिकीकरण की चर्चा अब कौन और कितनी करता है, यह विचार-मन्थन का विषय है। अभ्युदय के अन्तर्गत भौतिक उन्नति श्लाघ्य है, किन्तु निःश्रेयस की उपेक्षा मानो आत्मघात करना है। अभ्युदय और निःश्रेयस 'सर्वांगीण विकास की दो धुरियाँ हैं। अन्यथा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विकलांगता का फल राष्ट्र को ही भोगना पड़ेगा। इसका क्या औचित्य है ?

इस निःश्रेयस के अन्तर्गत ही हमारी आध्यात्मिक चेतना गुम्फित है। आध्यात्मिक चेतना का मूलाधार मानव-मस्तिष्क नहीं, अपितु परमपिता का मानव मात्र के लिए प्रदत्त ज्ञान 'वेद' है। इसे देश का दुर्भाग्य ही माना जायेगा कि गुणवाचक 'आर्य' का अर्थ बदलकर 'हिन्दू' कर दिया गया और हिन्दुवाद की आँधी वेद की उपेक्षा कर चलाई जा रही है। पूना-प्रवचन में एक बार कहीं शीघ्रतावश महर्षि दयानन्द से 'हिन्दू' शब्द निकल गया था किन्तु उन्होंने तत्काल प्रायश्चित्त कर, हिन्दू शब्द की व्याख्या कर उसे अग्राह्य बताया। इन दिनों हिन्दुवाद के आन्दोलन करने वाले पौराणिकवाद की नीवों को ही सींच रहे हैं। समझ में नहीं आता कि इन हिन्दुवादियों को 'आर्य', 'आर्यावर्त्त', 'आर्यभाषा' वेद और महर्षि दयानन्द के मिशन से न जाने चिढ़ क्यों होती है ? इन हिन्दुओं के हिन्दूपन के कारण ही सामाजिक विघटन तेजी से हो रहा है। इस विघटन को रोकना भारतीयता की चेतना को अग्रसर करना है।

> ***लेखक के प्रदेश के गृह नगर महानगर में स्थापित 'अन्नपूर्णा मन्दिर' परिसर में ही 'वेद-भवन' है। जब इस 'वेद-भवन' के भीतर-बाहर 'वेद भगवान्' के दर्शन करने का प्रयास किया, तो वहाँ अपौरुषेय ग्रन्थ के मन्त्र-द्रष्टा अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा आदि ऋषियों के चित्र अंकित थे, किन्तु 'वेद भवन' में चारों वेद रखे हुए दिखाई नहीं दिये। सम्पर्क करने पर बताया गया कि चारों वेद आज भी उपलब्ध नहीं होते। कलियुग के प्रभाव से वेद धरातल पर आना नहीं चाहते। वैदिक ऋषियों के देश भारत में वेद के प्रति ऐसी उपेक्षापूर्ण भावना हमारे धर्माचार्यों के सम्मुख एक चुनौती है। —लेखक***

वेद-प्रचार सप्ताह के पुनीत अवसर पर समाज में वेद-मन्त्रों के शतक-मन्त्रों की अर्थ सहित छोटी जेबी, जो कि कुर्ते या कोट की जेबों में आसानी से रखी जा सकें, पुस्तकें प्रकाशित करवा कर लागत मूल्य पर ही उनका विक्रय -वितरण किया जाये। वेद-प्रचार सप्ताह के अवसर पर ही सत्यार्थप्रकाश का लघु और सस्ता संस्करण छापकर प्रचारित-प्रसारित किया जावे। वेद सप्ताह की समाप्ति योगिराज श्रीकृष्ण की वर्ष-ग्रन्थि पर होती है, अतएव योगिराज श्रीकृष्ण के प्रति आर्यसमाज का क्या दृष्टिकोण है, इस पर छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ प्रकाशित कर जनसाधारण में वितरित की जायें।

इसी वेद-प्रचार के सप्ताह के प्रथम दिन अर्थात् भाद्रपद प्रतिपदा को नवीन यज्ञोपवीत भेंट किये जाते हैं। इन पंक्तियों के लेखक का अनुभव है कि इस अवसर पर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यज्ञोपवीत के महत्त्व पर विद्वानों द्वारा गृह्य सूत्रों पर आधारित यज्ञोपवीत का सुन्दर विवेचन किया जाता है, किन्तु 'शिखा' (चोटी) के सम्बन्ध में कदाचित् ही किसी का ध्यान जाता होगा। "भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत' शिखा और सूत्र अर्थात् चोटी और जनेऊ का बड़ा महत्त्व है। इसी चोटी की रक्षा के लिए ही मुगल काल से लेकर देश-विभाजन के समय तक असंख्य आर्यों (हिन्दुओं) ने अपना सर्वस्व त्याग कर भारत में आना पसन्द किया। इस शिखा के कारण ही पश्चिमी पंजाब तथा पूर्वी बंगाल के लाखों आर्य-हिन्दू नागरिक भारत आये। एक किंवदन्ती के अनुसार अत्याचारी और मतान्ध औरंगजेब प्रतिदिन ३ मन जनेऊ हिन्दुओं को मार कर इकट्ठा करता था और उन्हें जलाकर अपने नहाने के पानी गर्म करवाता था। अतएव श्रावणी-पर्व के पुनीत अवसर पर केवल सूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत अपितु शिखा धारण करने का भी व्रत करवायें। सत्य-असत्य, प्रकाश-अन्धकार, न्याय-अन्याय, विद्या-अविद्या के समान ही शिखा और सूत्र का अटूट सम्बन्ध है। श्रावणी-पर्व पर श्रावणी उपाकर्म के अवसर पर ही शिखा धारण करने का भी व्रत-संकल्प करवाया जाये। यह पुनीत कार्य केवल और केवल आर्यसमाज ही कर सकता है। शेष, हिन्दुत्व का दम्भ भरने वाली संस्थाएँ तो मात्र जनभावनाएँ उभारकर 'वोट-बैंक' को भरने की तैयारी में लगी रहती हैं।

> ***संसार भर के सभी पन्थ, मत, सम्प्रदाय तथा मजहब मिलकर एक 'धर्म' नहीं बन सकते। पन्थ-निरपेक्ष की चर्चा करने वाले सम्प्रदाय समाज को जोड़ने की अपेक्षा उसे तोड़ने का कार्य अधिक करते हैं। इनसे राष्ट्र अधिक टूटा है। 'आज धर्म' के कार्य और समाज कल्याण तथा विश्व मानवता की सेवा का सन्देश फैलाने में आर्यसमाज की बड़ी आवश्यकता है।***
>
> ***सम्पादक***

आज आवश्यकता है, इस स्वतन्त्र देश के बहुसंख्यकों में अपनी मौलिक सांस्कृतिक चेतना को जागृत करने की। स्वतन्त्रता की अर्ध-शताब्दी समाप्त हो जाने पर भी हमारी सांस्कृतिक अवधारणाएँ बलवती नहीं हुई हैं ? इस सांस्कृतिक धारणा को कथित 'पन्थ-निरपेक्षता ने भ्रमित कर रखा है। ध्यान रखने योग्य सिद्धान्त है कि हजारों पन्थ" मिल जाने पर भी एक 'धर्म' स्थापित नहीं हो सकता। यह भी भ्रामक सिद्धान्त है कि विभिन्न पन्थ मानो अलग-अलग 'पथ' हैं, जो अन्त में जाकर एक ही स्थान पर मिल जाते हैं। हमारे इस विशाल देश में प्रायः २०-२५ राष्ट्रीय-मार्ग हैं, जो भारत के विभिन्न भागों में फैले हुए हैं। यातायात के राष्ट्रीय मार्ग कभी भी एक नहीं हो सकते। मत-पन्थ-सम्प्रदाय समाज में विभाजक रेखाएँ स्थापित करते हैं। ये राष्ट्रीय समाज को तोड़ते हैं जोड़ते नहीं हैं। इसी तथ्य के आधार पर कुछ राजनैतिक दल अपनी सत्ता सुख की भूख को तृप्त करने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सृष्टि-संवत् गणना ऐतिहासिक
(महर्षि दयानन्द की अनुपम देन)

–राजवीर शास्त्री

(क) सृष्टि-संवत् की गणना में जो विविधता आर्यों में दिखाई देती है, वह विचित्र है। सब से अधिक आश्चर्य यह है कि महर्षि दयानन्द में आस्था रखने वालों में विविध मत एवं विवाद हैं। हमने यहाँ महर्षि भक्तों के साथ कुछ विचार विमर्श करना है। क्या आप महर्षि के लेख पर पूर्ण विश्वास व श्रद्धा रखते हैं ? महर्षि लिखते हैं कि मैंने जो सृष्टि-संवत् गणना लिखी है, वह सब मनुष्यों को मानने योग्य है—**इयं व्यवस्था सर्वैर्मनुष्यैः स्वीकर्त्तुं योग्याऽस्ति।** अर्थात् ऋ०भा०भू० में जो सृष्टि-संवत् गणना मैंने लिखी है वह सभी मनुष्यों को माननी चाहिये।

(ख) यह गणना ऐतिहासिक व सर्वविदित है—

आबालवृद्धैः प्रत्यहं विदितत्वाद् इतिहासस्यास्य सर्वत्र आर्यावर्त्तदेशे वर्त्तमानत्वात् सर्वत्रैकरसत्वाद् अशक्येयं व्यवस्था केनापि विचारयितुमिति विज्ञायताम्।

अर्थात् आर्यावर्त्त देश में प्रत्येक बच्चे से लेकर वृद्ध पर्यन्त सब को इस व्यवस्था का बोध है और उनमें एकरूपता है, इस व्यवस्था को कोई भी मनुष्य अन्यथा नहीं कर सकता, यह सब को जानना चाहिये।

(ग) "आर्यों ने एक क्षण और निमेष से ले के एक वर्ष पर्यन्त की काल की सूक्ष्म और स्थूल संज्ञाएँ बांधी हैं।"

"इसी प्रकार के सब व्यवहार आर्य लोग बालक से वृद्ध पर्यन्त करते और जानते चले आये हैं। जैसे—बही खाते में मिति डालते हैं, वैसे ही महीना और वर्ष बढ़ाते, घटाते चले जाते हैं और यही इतिहास आज पर्यन्त सब आर्यावर्त्त देश में एकरस वर्त्तमान हो रहा है और सब पुस्तकों में भी इस विषय में एक ही प्रकार का लेख पाया जाता है। किसी प्रकार का इस विषय में विरोध नहीं है। इसीलिये इसको अन्यथा करने में किसी का सामर्थ्य नहीं हो सकता।"

(घ) "सृष्टि की उत्पत्ति से लेके आज पर्यन्त एक-एक दिन दिन गिनते और क्षण से लेके कल्पान्त की गणित विद्या को प्रसिद्ध करते चले आते हैं अर्थात् परम्परा से सुनते-सुनाते, लिखते-लिखाते और पढ़ते-पढ़ाते आज पर्यन्त हम लोग चले आते हैं। यही व्यवस्था **सृष्टि और वेद की उत्पत्ति के वर्षों की ठीक है और सब मनुष्यों को इसी को ग्रहण करना योग्य है।" (ऋ०भा०भू०)**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उपर्युक्त (क से घ) तक का समस्त लेख महर्षि दयानन्द का है। जो उन्होंने ऋ०भा०भू० में वेदोत्पत्ति प्रकरण में लिखा है।

क्या महर्षि दयानन्द के भवन में बैठने वाले तथा देश व विदेश में बसे महर्षि की जय-जयकार करने वाले आर्य लोग एवं प्रतिनिधि सभाओं के अधिकारी महर्षि के लेख व मन्तव्य पर सजग होकर ध्यान देंगे ? क्या उनमें ऐसी हिम्मत है कि वे महर्षि के लेख को अन्यथा करके मिथ्या सिद्ध कर सकें ? मैं इस विषय में सब का आह्वान करता हूँ कि वे शान्तमन होकर महर्षि के लेख पर विचार करेंगे ?

सृष्टि की काल-गणना

जिस दिन पृथ्वी सूर्य का एक चक्र पूर्ण करके नया चक्र प्रारम्भ करती है, उसे ही नव वर्ष प्रारम्भ कहते हैं। ज्योतिष शास्त्रों के प्राचीन ग्रन्थों के प्रमाणानुसार यह दिन चैत्र-शुक्ल, प्रतिपदा है। माना जाता है कि अमैथुनी सृष्टि के द्वारा इसी दिन सूर्योदय के समय मनुष्य ने धरती पर आँखें खोली थीं और पश्चात् मैथुनी सृष्टि चली थी और इसी दिन से उसने अपने उत्पन्न होने का काल गिनना प्रारम्भ किया अर्थात् मानव सृष्टि संवत् प्रारम्भ हुआ।

वेदादि शास्त्रों के अनुसार एक सम्पूर्ण सृष्टि, कल्प तथा ब्रह्म का दिन १००० चतुर्युगी का होता है और इतना ही समय ब्रह्मा की रात तथा पूर्ण प्रलय का होता है। इस प्रकार यह क्रम अनादिकाल से चला आ रहा है और चलता रहेगा। इस दृष्टि से शास्त्रों में सृष्टि को प्रवाह से अनादि कहा है। १००० चतुर्युगी में से प्रथम ६ चतुर्युगी जड़ादि सृष्टि कहलाती है। जिसमें जड़ादि पदार्थों का निर्माण होता है। पश्चात् ९९४ चतुर्युगी को चेतन अर्थात् मानव सृष्टि कहते हैं।

चतुर्युगी

एक चतुर्युगी में सत्, त्रेता, द्वापर और कलि नामक चार युग होते हैं। इनकी काल गणना निम्न प्रकार है—

सतयुग	=	४ × ४,३२,०००	=	१७,२८,०००	वर्ष
त्रेतायुग	=	३ × ४,३२,०००	=	१२,९६,०००	वर्ष
द्वापरयुग	=	२ × ४,३२,०००	=	०८,६४,०००	वर्ष
कलियुग	=	१ × ४,३२,०००	=	०४,३२,०००	वर्ष
एक चतुर्युगी	=			४३,२०,०००	वर्ष

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अतः जड़ सृष्टि	६ × ४३,२०,०००	=	२,५९,२०,००० मानव
या मन्वन्तरसृष्टि	९९४ × ४३, २०,०००	=	४,२९,४०,८०,०००
एक सम्पूर्ण सृष्टि		=	४,३२,००,००,०००

मन्वन्तर काल-गणना

एक मानव सृष्टि में १४ मन्वन्तर होते हैं : १—स्वायम्भुव, २—स्वारोचिष, ३—औत्तामी, ४—तामस, ५—रैवत, ६—चाक्षुष, ७—वैवस्वत, ८—दक्ष सावर्णि (रैभ्य), ९—ब्रह्म सावर्णि (रौच्य), १०—धर्म सावर्णि, ११—मेरु सावर्णि, १२—रुद्र सावर्णि, १३—रुचि, १४—भौम। वर्तमान में सातवाँ मन्वन्तर वैवस्वत चल रहा है। एक मन्वन्तर में ७१ चतुर्युगी होती हैं।

अर्थात् मानव सृष्टि	= १४ मन्वन्तर × ७१	= ९९४ चतुर्युगी
जड़ादि सृष्टि	=	= ६ चतुर्युगी
अतः एक सम्पूर्ण सृष्टि =		१००० चतुर्युगी

वर्तमान मन्वन्तर सृष्टि की काल-गणना

चैत्र—शुक्ल, प्रतिपदा, विक्रम संवत् २०५५ से पहले छः मन्वन्तर व्यतीत होकर सातवां वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। इस पन्वन्तर की २७ चतुर्युगी व्यतीत होकर २८ वीं चतुर्युगी के सत, त्रेता, द्वापर युग के साथ कलियुग के ५०९८ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं अर्थात् छः मन्वन्तर का व्यतीत चतुर्युगी काल ६ × ७१ × ४३,२०,००० = १,८४,०३, २०,०००. ७ वां मन्वन्तर का व्यतीत चतुर्युगी काल २७ × ४३,२०,००० = ११,६६,४०,०००

+ २८वीं चतुर्युगी का व्यतीत काल =

सतयुग	=	१७,२८,०००
त्रेतायुग	=	१२,९६,०००
द्वापरयुग	=	०८,६४,०००
कलियुग का व्यतीत काल	=	५,०९८
कुल व्यतीत काल	=	१,९६,०८,५३

वर्तमान सम्पूर्ण सृष्टि का शेष काल

सम्पूर्ण सृष्टि काल (जड़ सृष्टि + मानव सृष्टि का व्यतीत काल) ४,३२,००,००,००० — (२,५९,२०,०००. १,९६,०८,५३,०९८) = २,३३,३२,२६,९०२) शेष काल अर्थात् दो अरब, तैंतीस करोड़, बत्तीस लाख, छब्बीस हजार, नौ सौ दो वर्ष सृष्टि का शेष काल है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"यह सृष्टि और मानव सृष्टि, संवत् यों ही केवल कल्पना के आधार पर नहीं है अपितु यह एक ऐतिहासिक संवत् है। हम आर्य लोग निम्नलिखित प्रत्येक यज्ञादि शुभ कार्य के पूर्व पण्डितों द्वारा बोले जाने वाले संकल्प पाठ के साथ बही खाते की तरह लिखते-लिखाते, पढ़ते-पढ़ाते चले आये हैं। आगे आने वाले भोग के वर्षों में एक-एक वर्ष घटाते जाना और व्यतीत वर्षों में क्रम से एक-एक वर्ष मिलाते जाना चाहिये। जैसे आज पर्यन्त घटाते बढ़ाते चले आये हैं।" (महर्षि दयानन्द)

प्रश्न–सृष्टि और प्रलय का कुल समय कितना है ?

उत्तर–एक हजार चतुर्युगियों का काल सृष्टि का समस्त काल है। इसे ही एक ब्राह्म दिन कहते हैं और इतना ही समय प्रलय का होता है।

प्रश्न–एक सृष्टि में भुक्तभोग कितना है।

उत्तर–महर्षि दयानन्द ने लिखा है एक ब्राह्म दिन में १४ मन्वन्तरों का काल भुक्त भोग काल है। यही समस्त प्रश्नों का उत्तर महर्षि ने बताया है–

एकस्मिन् ब्राह्मदिने १४ चतुर्दश भुक्तभोगा भवन्ति। एकसहस्रं १००० चातुर्युगानि ब्राह्मदिनस्य परिमाणं भवति ब्राह्म्या रात्रेरपि तावदेव परिमाणं विज्ञेयम्।।

अर्थात् एक ब्राह्मदिन में १४ मन्वन्तरों का काल ही भुक्त भोग काल होता है। ब्राह्म दिन का सम्पूर्ण समय १००० चतुर्युगी है और ब्राह्मी रात्रि का काल भी उतना ही अर्थात् १००० चतुर्युगी होता है।

प्रश्न–जब ब्राह्मदिन १००० चतुर्युगियों का माना गया है तो आप भुक्तभोग काल १४ मन्वन्तरों का अर्थात् ९९४ चतुर्युगियों का ही क्यों मानते हैं।

उत्तर–यही समस्या थी जिसे महर्षि ने अपनी सूक्ष्मबुद्धि से स्पष्ट किया है। आर्यों ने इसे ही नहीं समझा, जिससे विविध मत पैदा हो गये हैं।

प्रश्न–आप १४ मन्वन्तरों के काल से बचे वर्षों को कहाँ जोड़ते हो, जब कि वह काल भी सृष्टि का ही है।

उत्तर–आपने अच्छा प्रश्न पूछा है। ऐसा प्रश्न पूछना स्वाभाविक था। १४ मन्वन्तरों में ९९४ चतुर्युगी होती हैं, शेष छः चतुर्युगी का समय सृष्टि-रचना में लगता है क्योंकि ऋषि ने लिखा है–

जब सृष्टि का समय आता है तब परमात्मा उन परम सूक्ष्म पदार्थों को इकट्ठा करता है। उससे प्रथम अवस्था "महत्तत्व, अहंकार, ज्ञानेन्द्रियाँ तथा स्थूल भूतों की उत्पत्ति होती है।" (सत्यार्थप्रकाश अष्टम समुल्लास)

अतः सृष्टि के बनने में ६ चतुर्युगी का समय लगा है। सृष्टि में मानव की रचना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सबसे बाद में होती है, तब से १४ मन्वन्तरों का समय प्रारम्भ होता है।

प्रश्न–कुछ विद्वानों का विचार है कि सृष्टि-रचना में तीन चतुर्युगी का समय लगता है और तीन चतुर्युगियों का समय प्रलय में लगता है।

उत्तर–यह विचार बुद्धि संगत नहीं है। क्योंकि सृष्टि = सृजन का समय प्रलय में नहीं लगता है। इसका कारण यह है कि कारण में लय होना प्रलय कहलाती है और उसमें जो समय लगेगा वह प्रलय काल होता है, सृष्टि का नहीं। और इस बात को महर्षि ने स्वयं स्पष्ट किया है–

"जब पर्यन्त हजार चतुर्युगी व्यतीत न हो चुकेंगी, तब पर्यन्त ईश्वरोक्त वेद का पुस्तक, यह जगत् और हम मनुष्य लोग भी ईश्वर के अनुग्रह से सदा वर्तमान रहेंगे।" (ऋ०भा०भू० वेदोत्पत्ति)

अतः सृष्टि-रचना में ही छः चतुर्युगी का समय लगा है, यह मानना उचित है। इससे सभी समस्याओं का समाधान हो जाता है।

प्रश्न–आप ने सभी प्रश्नों को महर्षि के लेख को उद्धृत करके समाधान किया, किन्तु फिर भी एक प्रश्न मन में उठ रहा है, उसका समाधान भी अवश्य करें। आप के सृष्टि-रचना के वर्षों को तथा १४ मन्वन्तरों के काल कों सृष्टि का माना है, परन्तु सृष्टि-रचना के वर्षों को सृष्टि-संवत् में क्यों नहीं जोड़ते ?

उत्तर–जैसे मनुष्य की आयु जन्म से मानी जाती है, परन्तु उसके गर्भस्थ रचना के समय को आयु में नहीं गिना जाता है। इसी प्रकार सृष्टि-रचना के वर्षों को भी सृष्टि के ऐतिहासिक संवत् में नहीं गिना गया। महर्षि ने इसे ऐतिहासिक संवत् लिखा है और इतिहास जन्म के पश्चात् ही प्रारम्भ होता है और यदि कोई उसके जोड़ने का भी आग्रह करे तो हमें कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु महर्षि सम्मत नहीं रहेगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेद ही क्यों? बाईबिल व कुरान क्यों नहीं?

यशपाल आर्य बन्धु, आर्य-निवास, चन्द्रनगर, मुरादाबाद

महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज की यह सुस्पष्ट मान्यता है कि केवल वेद ही निर्भ्रान्त, अपौरुषेय, ईश्वरीय ज्ञान हैं। अन्य तथाकथित इल्हामी पुस्तकें यथा कुरान, बाइबिल, जबूर, तोरेत, गीता, पुराण, जिन्दावस्था आदि ईश्वरीय ज्ञान नहीं। पर क्यों? इसलिए कि ये सब ईश्वरीय ज्ञान की कसौटियों पर खरी नहीं उतरतीं। केवल वेद ही एकमात्र ऐसा ज्ञान है कि जो उन कसौटियों पर पूर्णतया खरा उतरता है। अब हम उन कसौटियों को प्रस्तुत करते हैं और उन पर इन सब को कसकर परखते हैं।

१. ईश्वरीय ज्ञान की कसौटियां–ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि के आदि में ही मानव की उत्पत्ति के साथ दिया जाना चाहिए। क्योंकि ज्ञान की आवश्यकता तभी होती है जबकि मनुष्य पूर्णतया अज्ञानी होता है। वह काल सृष्टि का काल ही है। अतः ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में दिया जाना अनिवार्य है। इस कसौटी पर वेद को छोड़कर अन्य कोई खरा नहीं उतरता। जब हम कुरान का अवलोकन करते हैं तो उसमें बाइबिल का वर्णन मिलता है। और जब हम बाइबिल को देखते हैं तो उसमें जबूर का और जबूर में तौरेत का, और तौरेत में जिन्दावस्था का, जिन्दावस्था में वेद का वर्णन मिलता है पर वेद में किसी ग्रन्थ का वर्णन नहीं मिलता। इसी से वेदों की प्राचीनता सिद्ध है।

२. ईश्वरीय ज्ञान की दूसरी कसौटी–यह है कि मानवीय भाषा का प्रवाह उसी से फूटे। अर्थात् भाषा की उत्पत्ति उसी ज्ञान के द्वारा हो। इस कसौटी पर भी वेद के अतिरिक्त और कोई खरा नहीं उतरता। क्योंकि कुरान से पहले कुरान की भाषा विद्यमान थी। बाइबिल से पहले बाइबिल की, जबूर से पहले जबूर की, तौरेत से पहले तौरेत की, और जिन्दावस्था से पहले जिन्दावस्था की भाषा विद्यमान थी, पर वेद से पहले कोई भाषा विद्यमान नहीं थी। इससे इस कसौटी पर भी केवल वेद ही खरा उतरता है।

३. ईश्वरीय ज्ञान की तीसरी कसौटी–उसका सृष्टि-क्रम के अनुकूल होना है। इस कसौटी पर केवल वेद ही खरा उतरता है। क्योंकि उसमें कोई भी बात सृष्टि-क्रम के विपरीत नहीं। वेद और सृष्टि एक ही सत्ता के दो विभिन्न कार्य हैं और दोनों में पूर्ण सामंजस्य होना अनिवार्य है। इसलिए इस कसौटी पर भी केवल वेद ही खरा उतरता है। कुरान, बाइबिल तथा पुराण आदि में सृष्टि-क्रम के विरुद्ध अनेक बातें मिलती हैं जिनसे सिद्ध है कि ये सब ईश्वरीय ज्ञान नहीं।

४. ईश्वरीय ज्ञान की चौथी कसौटी–यह है कि वह केवल ज्ञान या विद्या का पुस्तक होना चाहिए अर्थात् उसमें किसी प्रकार का लौकिक या अनित्य इतिहास नहीं होना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चाहिए। इस कसौटी पर भी केवल वेद ही खरा उतरता है क्योंकि कुरान, बाइबिल, पुराण आदि अनित्य इतिहास से भरे पड़े हैं। वेद में अनित्य इतिहास का लेशमात्र भी नहीं। वेद में राजा का तो वर्णन है पर राजा विशेष का नहीं। इसी प्रकार वेद में अनित्य भूगोल भी नहीं। वेद में नदी, पर्वत या देश का तो वर्णन है पर किसी नदी विशेष, पर्वत विशेष या देश विशेष का वर्णन नहीं। इससे इस कसौटी पर केवल वेद ही खरा उतरता है।

५. ईश्वरीय ज्ञान की पांचवीं कसौटी–यह है कि वह किसी देश विशेष, जाति विशेष या काल विशेष की सीमाओं में आबद्ध न हो। अपितु वह सार्वभौम, सार्वकालिक तथा सार्वजनीन होना चाहिए। इस कसौटी पर भी केवल वेद ही खरा उतरता है। क्योंकि उसी की शिक्षाएं ही सब कालों और सब स्थानों के सब मनुष्यों के लिए हैं।

६. ईश्वरीय ज्ञान की छठी कसौटी–यह है कि वह ज्ञान समस्त ज्ञान-विज्ञान और विद्या का आदि स्रोत हो। इस कसौटी पर भी वेद के अतिरिक्त और कोई खरा नहीं उतरता। क्योंकि वेद ही एक मात्र ऐसा ज्ञान है कि जिसमें मानव के लिए उपयोगी समस्त ज्ञान, विज्ञान और विद्याएं मूल रूप से समाविष्ट हैं।

७. ईश्वरीय ज्ञान की सातवीं कसौटी–यह है कि उसमें मानव के अभ्युदय एव निःश्रेयस की सिद्धि की पूर्ण योजना व कार्यक्रम विद्यमान हो। इस कसौटी पर भी वेद के अतिरिक्त और कोई खरा नहीं उतरता।

८. वह ज्ञान ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल वर्णन वाला और उसमे ईश्वर का वर्णन भी ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुरूप ही होना चाहिए। इस कसौटी पर भी वेद के अतिरिक्त और कोई खरा नहीं उतरता। क्योंकि अन्य पुस्तकों में तो ईश्वर की आत्मा को पानी पर तैरते बताया गया है किन्हीं में चौथे आसमान पर, किन्हीं में सातवें आसमान और किन्हीं में क्षीर सागर अथवा कैलाश पर्वत पर होना बताया गया है जबकि वेद ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हैं।

ईश्वरीय ज्ञान के निर्धारण में सहायक कसौटियों पर जब हम पुराण, बाइबिल, जबूर, तौरेत, जिन्दावस्था, गीता, कुरान, रामायण, उपनिषद्, ब्राह्मण, आरण्यक तथा अन्य ग्रन्थों को कसकर देखते हैं तो उनमें से कोई भी उपर्युक्त कसौटियों पर खरा नहीं उतरता। केवल वेद संहिताएं ही उन कसौटियों पर खरी उतरती हैं। अतः सिद्ध है कि वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है। अन्य कुरान, बाइबिल, पुराण आदि नहीं। यही कारण है कि आर्यसमाज के तीसरे नियम में कहा गया है कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना, पढ़ाना और सुनना, सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

आइये ! श्रावणी के इस पावन पर्व पर हम सब आर्य जन वेद के पढ़ाने-पढ़ाने और सुनने-सुनाने रूपी परम धर्म में प्राणपन से जुट जायें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेद गौरव

कविवर प्रणव शास्त्री एम०ए० महोपदेशक

ज्ञान की जगमग ज्योति विशाल धरा को अतिकल्याणी है।
सृष्टि के आदिकाल में प्राप्त वेद यह प्रभु की वाणी है।। १।।
ईश है एक, ज्ञान है एक, उसी की वाणी एकल है।
ऋग्यजुः साम अथर्वण भेद से चार सुनिश्चल है।
महत्ता ज्ञानी जनता ने सदा से उसकी जानी है।। २।।
इसी ने भाषा ज्ञान, विचार नाम-निर्धारण बतलाया।
सकल शुचि संस्थानों का जन्म चलाना सब को सिखलाया।
कि आवश्यक कर्तव्य कर्म की मर्म-निशानी है।। ३।।
जनक जननी या भाई-बहिन, सभी सम्बन्ध सिखाती है।
गुरु या शिष्य पिता या पुत्र सखा के शिविर तनाती है।
प्रजा-नृपति सम्बन्ध-शृङ्खला स्वर्णिम तानी है।। ४।।
सफल शुभ संस्कृति सारों की धरणि की धवल धरोहर है।
सभी को सुखदायक उपकार प्यार की वीणा मातृ मनोहर है।
इसी के पावन पुण्य प्रसाद प्राप्ति से हर्षित प्राणी है।। ५।।
लिये गुण, कर्म स्वभाव रूप वर्ण ये चार बतायें हैं।
इसी से होगा विश्व-विकास भाव निष्पक्ष सुझाये हैं।
व्यवस्था आश्रम-प्रचलन से समुन्नति भू की मानी है।। ६।।
सभी से प्रेम-मधुर व्यवहार विरुद की वीण बजाती है।
प्रचारित पञ्च यज्ञ-प्रारूप लोक-कल्याण सजाती है।
धारती धर्म ज्ञान-विज्ञान गुणों की अद्भुत खानी है।। ७।।
बहाती त्रैतवाद की गङ्ग सदा सत्संग सुहाती है।
प्रभु का पुण्य प्रसाद सृष्टि की सुन्दर थाती है।
मिटाती त्रय तापों का दाह मुक्ति मन्दिर की रानी है।। ८।।
इसी का होवे पुण्य प्रचार जगत् आनन्द मनायेगा।
भोगकर लौकिक सुख साम्राज्य परम पद अन्तिम पावेगा।
यही बस लोक और परलोक देश की संसद् मानी है।। ९।।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेदार्थ-ज्ञान में वेदांगों का महत्त्व

डॉ० जयदत्त उप्रेती, स्वस्त्ययन, तल्ला थपलिया, अल्मोड़ा

परः सहस्र वर्ष पूर्व वेदपारावारज्ञ महर्षियों ने वेदार्थ को सुगमता से समझने के लिए विभिन्न शास्त्रों की स्वतन्त्र रूप से रचना की थी। उन सब का लक्ष्य उस शास्त्र की सहायता से वेद का अध्ययन कराकर अध्येताओं को वेदार्थ से सुपरिचित कराना था। यह कार्य दो दिशाओं में किया गया। एक ओर वेद के अध्ययन और अर्थज्ञान के लिए उपयोगी छः वेदांग नामक शास्त्रों की रचना की गई, दूसरी ओर वेदार्थ को विस्तृत रूप से पृथक-पृथक् जानने के लिए उसके व्याख्यारूप विभिन्न ग्रन्थ रचे गये, जिनमें उल्लेखनीय हैं—अर्थवेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद तथा आयुर्वेद नामक चार उपवेद, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वोत्तरमीमांसा नामक छः वेदोपांग, ईशावास्यादि ११ उपनिषद् ग्रन्थ तथा ऐतरेय-शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थ और मनुस्मृत्यादि धर्मशास्त्र के ग्रन्थ। इनमें से प्रकृत लेख में केवल इस बात पर संक्षेप से हम विचार करेंगे कि वेदांगों का वेदार्थज्ञान में क्या स्थान है। ये वेदांग हैं—शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, कल्प तथा ज्योतिष। पूर्वाचार्यों ने एक रूपकालंकार द्वारा वेदरूपी पुरुष के शरीर में इन शिक्षादि अंगों की कल्पना इस प्रकार से की है—

शब्दशास्त्रं मुखं चक्षुषी ज्यौतिषं श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पं करौ।
या तु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिका पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः।।

सिद्धान्तशिरोमणि : १। १। १

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्यौतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्साङ्गमधीत्य वै ब्रह्मलोके महीयते।।

पाणिनीयशिक्षा, श्लोक ४१, ४२

अर्थात् सम्पूर्ण वेद को यदि शरीरधारी पुरुष के रूप में कल्पित किया जाय तो ये छः शास्त्र छः अंगों के समान हैं। जैसे कि व्याकरणशास्त्र मुख के समान है, ज्योतिषशास्त्र नेत्र के समान है, निरुक्तशास्त्र श्रोत्र के समान है, शिक्षाशास्त्र नासिका के समान है, कल्पशास्त्र दो हाथों के समान है और छन्दःशास्त्र दो पैरों के समान है।

इनमें अध्ययन सौकर्य के अनुसार शिक्षादि के क्रम से प्रत्येक शास्त्र के संक्षिप्त स्वरूप और उसकी वेदार्थज्ञान में उपयोगिता पर आगे प्रकाश डाला जाता है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शिक्षाशास्त्र–शिक्षा से तात्पर्य वर्णोच्चारण शिक्षा से है। सम्प्रति आपिशलि, पाणिनि, चन्द्रगोमी और याज्ञवल्क्य के शिक्षासूत्र और श्लोक मिलते हैं। इनमें वेद और संस्कृत भाषा में प्रयुक्त होने वाले समस्त स्वर-व्यञ्जनों तथा अयोगवाहों के उच्चारण की रीति, वर्णों के उच्चारण स्थान, कारण, प्रयत्न आदि बातों पर विचार किया गया है। स्वर-व्यञ्जनादि के सम्यग् ज्ञान से न केवल संस्कृत भाषा के ग्रन्थों का अपितु वेदों का भी पठन-पाठन विशेषतः उच्चारणादि शुद्ध रूप से किया जा सकता है। वेदों के पदपाठों और संहितापाठ में सन्धिनियमों के विशेष ज्ञान के लिए इन शिक्षा-ग्रन्थों के साथ साथ प्रातिशाख्यों का भी अध्ययन किया जाता है।

व्याकरणशास्त्र–साधु शब्दों की व्युत्पत्ति दर्शाना और तद्द्वारा शब्दार्थ और वाक्यार्थ का ज्ञान करना इस शास्त्र का लक्ष्य मानां जाता है। परन्तु महाभाष्यकार पतञ्जलि के अनुसार—**रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्।** व्याकरणाध्ययन के अनेक प्रयोजनों में वेदों की रक्षा भी मुख्य प्रयोजन है। वस्तुतः व्याकरणशास्त्र संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, अव्यय, उपसर्ग, धातु, प्रातिपदिक, प्रकृति-प्रत्यय, कृत्, तद्धित, समास, कारक, विभक्ति, सन्धि, स्वर-संचार आदि का ज्ञान कराकर संस्कृत-भाषा और वेद-विषय में दक्षता प्राप्त कराता है। आजकल सर्वांगपूर्ण व्याकरण महर्षि पाणिनि का उपलब्ध है, जो अष्टाध्यायी नाम से प्रसिद्ध है। और ज़ो धातु-सूत्र-गणोणादि-नामलिङ्गानुशासनम् इस पञ्चपाठी नाम से भी जाना जाता है।

महामुनि पतञ्जलि के अनुसार पाणिनिप्रोक्त व्याकरण शास्त्र लोक (संस्कृत भाषा) और वेद दोनों के लिए उपयोगी है—**'सर्ववेदपारिषदं हीदं शास्त्रम्', 'शब्दानुशासनं नाम शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम्। केषां शब्दानाम् ? लौकिकानां वैदिकानां च'।** (महाभाष्ये, पस्पशाह्निके) अष्टाध्यायी में जहां पर लौकिक शब्दों से वैदिक शब्दों का रूप या सन्धि या स्वर इत्यादि भिन्न सूत्रकार को दिखाई देता है, वहां पर **बहुल छन्दसि, व्यत्ययो बहुलम्** इत्यादिरूपेण सामान्य नियम का अपवाद वेदविषय में वे दर्शा देते हैं। इस प्रकार अध्येता को बिना कठिनाई के दोनों रूपों का ज्ञान अष्टाध्यायी पद्धति से हो जाता है। उत्तरकाल में सिद्धान्तकौमुदी आदि प्रक्रिया-ग्रन्थों में सूत्र-क्रम भंग कर दिये जाने से तथा वैदिक शब्दों के विषय को साथ साथ न पढ़ाया जाकर पृथक् से पढ़ाये जाने अथवा छोड़ देने के कारण जैसे कि लघुसिद्धान्तकौमुदी से स्पष्ट है, वेदाध्ययन ह्रासोन्मुख होने लगा। परन्तु पुनः वर्तमान युग में महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रयत्न से और उनके अनुयायी आर्य विद्वानों के सतत अध्यवसाय से ऐसा लगता है मानो पाणिनियुग पुनः लौट आया है। क्योंकि आज भी अनेक गुरुकुलों और पाणिनि विद्यालयों में अष्टाध्यायी कण्ठस्थ करने वाले छात्र और छात्राएं देखी जा सकती हैं। आगे चलकर वे ही वेद का प्रचार करेंगे, क्योंकि महाभाष्यान्त व्याकरण पढ़ लेने पर वेद में प्रवेश और वेदार्थ में गति होने लगती है। इसीलिए षडंगों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में व्याकरण को प्रधान माना गया है और वैयाकरणों के द्वारा वेदों की रक्षा और प्रचार-प्रसार की बात कही गयी है –

"रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्। लोपागमवर्णविकारज्ञो हि सम्यग् वेदान् परिपालयिष्यतीति। आगमः खल्वपि–ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च। प्रधानं च षडङ्गेषु व्याकरणम्। प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति"।

(महाभाष्यम्)

निरुक्तशास्त्र–व्याकरण की भांति निरुक्तशास्त्र की परम्परा भी बहुत प्राचीन है। कभी यहां १४ निरुक्त थे। वे अब नहीं मिलते। सम्प्रति महर्षि यास्कप्रणीत निघण्टु और निरुक्त ही उपलब्ध है। निघण्टु को वैदिक शब्दकोष कहा जाता है। इसमें पांच अध्यायों में लगभग १८०० शब्द संगृहीत हैं। इनमें से अनेक शब्दों का निर्वचन निरुक्तशास्त्र में किया गया है। इसमें कुल १४ अध्याय हैं, जिसमें प्रारम्भ के ६ अध्याय नैगमकाण्ड नाम से, उत्तरार्द्ध के छः अध्याय दैवतकाण्ड नाम से और अन्तिम दो अध्याय परिशिष्ट नाम से (अध्यात्मविद्याप्रधान) जाने जाते हैं। इसमें प्रायः ऋग्वेद के मन्त्रों के उदाहरण देकर वैदिक शब्दों के निर्वचन द्वारा मन्त्रों के आधियाज्ञिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक अर्थों पर प्रकाश डाला गया है।

निरुक्त के अनुसार वैदिक शब्द रूढ़ि अर्थों के वाचक न होकर यौगिक होते हैं– **'नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो निरुक्तसमयश्च, न सर्वाणीति गार्ग्यः'**। (निरुक्तम् १।४।१) अर्थात् वैयाकरणों में शाकटायन मुनि तथा निरुक्तशास्त्र का अध्ययन करने वाले लोगों का मत है कि वेदों के संज्ञावाची शब्द धातुज हैं। धातुओं के भिन्न-भिन्न अर्थ होने के कारण वैदिक नामपदों के भी अनेक प्रकार के अर्थ होते हैं। निरुक्तशास्त्र के इसी सिद्धान्त से जाना जाता है कि वेदों में कोई मानवीय इतिहास वर्णित नहीं है। इससे यह भी जाना जाता है कि वैदिक साहित्य में अग्नि, मित्र, वरुण, ब्रह्मा, विष्णु, गणपति, लक्ष्मी, सरस्वती, वृत्र, असुर आदि शब्द जहां लोक में एक वस्तु या व्यक्ति विशेष के वाचक हैं, वेद में ये शब्द भिन्न-भिन्न प्रसंगों में भिन्न-भिन्न अर्थों के वाचक हैं। ऋषि दयानन्द सरस्वती ने निरुक्त और व्याकरण की सर्वाधिक सहायता वेदार्थ करने में ली है। अनेक स्थानों पर उन्होंने अपनी अप्रतिम प्रतिभा से भी मन्त्रार्थ लिखे हैं। इसलिए उनका वेद-भाष्य वेदार्थ के क्षेत्र में क्रान्तिकारी सिद्ध हुआ है। अपने वेद-भाष्य में जो उन्होंने अपने पूर्ववर्ती सायण, उव्वट, महीधरादि भारतीय वेद-भाष्यकारों तथा विल्सन, मैक्समूलर आदि यूरोपीय वेदानुवादकों की आलोचना की है और उनके भाष्यगत दोष दर्शाये हैं, उसका आधार यही व्याकरण निरुक्तशास्त्र का वैचक्षण्य तथा योगज बल था। वस्तुतः निरुक्त के अध्ययन के बिना मन्त्रार्थ जाने ही नहीं जा सकते, व्याकरण की सहायता से भी जहां पदार्थ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नहीं खुल पाता वहां निरुक्तशैली से निर्वचन द्वारा विद्वान् भाष्यकार अर्थ जान लिया करते हैं। इसीलिए निरुक्त को व्याकरण का पूरक कहा गया है –

'अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थप्रत्ययो न विद्यते। अर्थमप्रतीयतो नात्यन्तं स्वरसंस्कारोद्देशः। तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कार्त्स्न्यं स्वार्थसाधकं च।''

(निरुक्तम् १। ५। १)

छन्दःशास्त्र–छन्दःशास्त्र से हमें वैदिक एवं लौकिक छन्दों के नामों और लक्षणों की जानकारी मिलती है। छन्दःशास्त्र का सम्प्रति उपलब्ध प्राचीनतम ग्रन्थ पिंगलाचार्यकृत छन्दः सूत्र है, जिसमें द्वितीय अध्याय से लेकर चतुर्थ अध्याय के सप्तम सूत्र पर्यन्त वैदिक छन्दों पर तथा उसके आगे अष्टम अध्याय के अन्त तक लौकिक छन्दों पर विचार किया गया है। छन्दोऽनुक्रमणी तथा कुछ प्रातिशाख्य ग्रन्थों में भी वैदिक छन्दों के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है।

कात्यायन मुनि ने संख्याविशेषयुक्त अक्षरों की पादादि व्यवस्था को छन्द कहा है–**'यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः।'** (कात्यायन : ऋक्सर्वानुक्रमणी २। ६)। वेदों में बहुधा प्रचलित गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती इन सात प्रकार के छन्दों का पिंगल छन्दःसूत्र आदि में वर्णन है। ये २४ अक्षर से प्रारम्भ होते हैं और ४८ अक्षर में समाप्त हैं। अन्य समस्त छन्द इनके ही भेद-प्रभेद का विस्तार रूप हैं। इनके यथोक्त ज्ञान से मन्त्रार्थ पर प्रकाश पड़ता है। इस बात को महर्षि जैमिनि ने पूर्वमीमांसा शास्त्र के इस सूत्र में वर्णित किया है–**'तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था।'** (पूर्वमीमांसासूत्र २। १। ३५) पाणिनिमुनि ने भी **'अनुदात्तं सर्वमपादादौ।'** (अ० ८। १। १) इत्यादि सूत्रों में छन्दःशास्त्रानुसारी मन्त्रपादादिव्यवस्था से अनुदात्त स्वर कहां होगा, कहां नहीं–इस बात को दर्शाया है। स्वर्गत पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक प्रणीत्त वैदिक छन्दोमीमांसा पुस्तक के पञ्चम अध्याय में इस विषय पर सप्रमाण जो विवेचन किया है, उससे ज्ञात होता है कि छन्दःशास्त्र का ज्ञान वेदार्थ में सहायक हुआ करता है।

ज्योतिषशास्त्र–ज्योतिषशास्त्र का सम्बन्ध हमारी पृथिवी और उसके चारों ओर के ग्रह, नक्षत्रों, चन्द्र, सूर्य आदि की गतियों के वर्णन से है। जिसमें कला, दण्ड, पल, घटी, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, महायुग, कल्प की गणना पर विचार किया है। इसे आजकल के प्रचलित शब्दों में भूगोल, खगोलशास्त्र तथा गणित नामों से भी जाना जा सकता है। वेदांग ज्योतिष में लगधप्रोक्त जो ३५ श्लोक मिलते हैं, उनका सारांश यह है कि ज्योतिष का सम्बन्ध काल-निर्णय से है। क्योंकि वेद यज्ञों आदि के लिए प्रवृत्त हुए हैं और यज्ञों का सम्पादन काल ज्ञान से ही सम्भव है, इसलिए ज्योतिष वेद के लिए बहुत उपकारक है और वह वेदांगों में मुख्य है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां ज्यौतिषं मूर्धनि स्थितम्।
वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्यौतिषं वेद स वेद यज्ञान्।।

(वेदांगज्यौतिप, श्लोक ७)

इसी प्रकार की बात भास्कराचार्य ने भी सिद्धान्तशिरोमणि में कही है—

वेदास्तावद् यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो यथा स्याद् वेदाङ्गत्वं ज्यौतिषस्योक्तमस्मात्।।

(सि० शि०, मध्यमा० ६)

इस प्रकार कालविधान वैदिक यज्ञादि कर्मकाण्ड में उपयोगी होने से ज्योतिपशास्त्र को वेदांग कहा जाता है, ऐसा इन आचार्यों का मत है। यह बात कुछ अंश तक सत्य है। परन्तु इससे भी बढ़कर ज्योतिर्विज्ञान से वेदों की अनेक गुत्थियां सुलझती हैं, ऐसा प्रतीत होता है। श्री ब्रह्ममुनि जी ने वैदिक ज्योतिषशास्त्र पुस्तक में इस विषय पर कुछ प्रकाश डाला है। हाल ही में श्री वीरेन्द्र सरस्वती ने वेदज्योति पत्रिका में ऋग्वेद के एक मन्त्र के आधार पर एक कल्प की आयु को दर्शाया है, जिसको वर्तमान ज्योतिपगणना से यथार्थ सिद्ध किया गया है। पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने लिखा है कि इन्दौर के प्रसिद्ध ज्योतिपी पं० दीनानाथ जी चुलैट ज्योतिषशास्त्र को वेदार्थ में परम उपयोगी मानते थे— उन्होंने उन्हें दो मन्त्रों की ज्यौतिषशास्त्रानुसारी व्याख्या समझायी थी। (द्रष्टव्य—वैदिक छन्दोमीमांसा, पृ० ८३, टिप्पणी सं० ३) ये सब सन्दर्भ सिद्धान्त और गणित ज्योतिष से सम्बन्धित हैं। फलित ज्योतिष को ऋषि दयानन्द ने प्रामाणिक नहीं माना। अतः उसका वेदार्थ से कोई सम्बन्ध उनकी दृष्टि में नहीं है। फलितज्योतिष के सम्बन्ध में एक ज्योतिषविवेक नाम से आलोचनात्मक ग्रन्थ ब्रह्मचारी वेदव्रत मीमांसक ने लिखा है। उसके द्वितीय अध्याय में ऋग्वेद १। ८४। १५ तथा यजुर्वेद ३। ६ मन्त्रों के उदाहरण से सप्रमाण यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार ज्योतिषशास्त्र मन्त्र के सत्य अर्थ तक पहुंचने में सहायता करता है। यह ग्रन्थ पढ़ने योग्य है।

कल्पशास्त्र—कल्पशास्त्र अर्थात् कर्मकाण्डसम्बन्धी शास्त्र को वेद का हाथ बतलाया गया है। जिस प्रकार हाथों से अनेक प्रकार के कर्म किये जाते हैं, उसी प्रकार कल्प से वैदिक कर्मकाण्ड को अच्छी तरह निष्पन्न किया जा सकता है। कल्प में श्रौतसूत्र, शुल्वसूत्र, गृह्यसूत्र, मनुस्मृति, पूर्वमीमांसादर्शन और यज्ञयागादि-विधायक ब्राह्मण ग्रन्थों से लेकर आधुनिक काल की ऋषि दयानन्द सरस्वती विरचित संस्कारविधि तक सभी ग्रन्थों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का समावेश हो जाता है जो कि प्रमाणकोटि में परिगणित होते हैं। इनमें भी श्रौतसूत्र विशेष रूप से श्रौतयज्ञों से सम्बन्धित हैं, जिनमें दर्श-पौर्णमास आदि यागों की विधि पर विचार किया गया है। आर्यसमाज में इनका प्रचार नहीं के बराबर है। केवल अपने जीवनकाल में महामहोपाध्याय पं० युधिष्ठिर जी ने बहालगढ़ में तथा पानीपत में श्री सैलूकर जी आदि वैदिकों को आमन्त्रित कर कभी श्रौतविधि से पौर्णमासेष्टि आदि का आयोजन कराया था। स्मार्त यज्ञों में पञ्चमहायज्ञों एवं विविध संस्कारों के अवसर पर होने वाले यज्ञों को सम्मिलित किया जाता है। इनका वर्णन गृह्यसूत्रों, मनुस्मृति तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है। यों ब्राह्मण ग्रन्थों एवं पूर्वमीमांसा का सम्बन्ध उभयविध यज्ञयागादि से है। इनमें शतशः वेदमन्त्रों का विनियोग पूर्वाचार्यों ने किया हुआ है। स्वयं वेदमन्त्र यज्ञादि श्रेष्ठकर्म करने की प्रेरणा देते हैं और यज्ञ में उनका प्रयोग करते हुए विद्वान् ऋत्विज उनसे आधियाज्ञिक, आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक अर्थों को यथाप्रसंग ग्रहण करते रहते हैं। उदाहरणार्थ निम्नांकित मन्त्र कह रहा है —

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन।।

(यजुर्वेद ३। १)

स्पष्ट है इस मन्त्र में समिधा से अग्नि को प्रज्वलित करने, घृत से उसे प्रदीप्त करने और तदनन्तर उस प्रदीप्त अग्नि में हवियों का होम करने की प्रेरणा दी गई है। कर्मकाण्डविधायक वेदेतर ग्रन्थ इस मन्त्रार्थ को कर्म या प्रयोग द्वारा चरितार्थ करने की विधि बतलाते हैं कि इतने परिमाण की आहुति के लिए इस प्रकार की वेदी या यज्ञकुण्ड बनाया जाये और उसमें प्रयुक्त होने वाली समिधाएं चन्दन, पलाश, पीपल, आम्रादि की अमुक प्रमाण की लम्बी चौड़ी हों। चरु या हवि में अमुक-अमुक खाद्यान्नों या अन्य गिलोयादि ओषधियों का अमुक प्रमाण से स्वाहाकारान्त मन्त्रोच्चारण पूर्वक अमुक मात्रा में आहुति दी जाये। **'देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण०' ' कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतः समाः।'** (यजु० १। १, ४०। २)। इत्यादि मन्त्र कर्म के प्रेरक हैं। इस प्रकार वेदार्थ के साथ कर्म का (अटूट) सम्बन्ध कल्पशास्त्र की वेदांगता को सिद्ध करता है।। इति शिवम्।।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वैदिक समाजवाद

आचार्य डॉ० सत्यव्रत राजेश, दयानन्द नगरी, ज्वालापुर, हरिद्वार

आजकल समाजवाद का बहुत शोर है। राजनीतिक दल तो समाजवाद का ढिंढोरा पीटते नहीं थकते। सपा, बसपा आदि ने तो अपने साथ समाज शब्द को बांधा हुआ ही है। जब हम बच्चे थे और गांवों में रहते थे तो वहां आर्यसमाज के साथ तो समाज शब्द मिलता था शेष लोग समाज शब्द से अपरिचित थे किन्तु थे सच्चे समाजवादी। हम अपने घर में देखते थे। हमने अपनी भूमि से कुछ भाग निवास के लिए मुसलमान तेलियों को तथा कुछ स्थान हरिजनों को, जिन्हें उन दिनों चमार कहते थे, दिया हुआ था। वे सब भूमिहीन थे किन्तु भैंसें सब ने रखी हुई थीं। वे सब हमारे खेतों को अपना समझ कर उनसे घास काटते थे तथा अपना समझ कर उनकी रक्षा करते थे। जब तक वे वहां रहते तब तक किसी की हिम्मत नहीं थी कि वे हमारे खेतों को हानि पहुंचा सकें। हमारी ओर से भी उनके प्रति पूर्ण अपनत्व था। यदि किसी कारण कोई अन्य उन्हें कुछ कह देता वे शिकायत लेकर हमारे पास आते थे तथा हमारे घर वाले उनका पक्ष लेकर दूसरों से लड़ने जाते थे कि हमारे व्यक्ति को आपने ऐसा क्यों कहा। न ब्राह्मण-चमार का झगड़ा था और न हिन्दू-मुसलमान का। हमें याद है कि ईद से पहले दिन सायं का दूध बच्चों के लिए रखकर शेष सारा दूध हम तेलियों के यहां भेज देते थे। कोई नहीं सोचता था कि यह तो मुसलमानों का त्यौहार है हमारा नहीं। वे भी जब देवबन्द की ईदगाह से सायंकाल लौट कर आते थे तो सूखी मेवा हमारे घर देकर तब घर जाते थे। मानो हम उनके पर्व में सहयोगी हैं और वे अपने पर्व की प्रसन्नता को बांट कर अपनत्व दिखाते हों। यह सभी लोग करते थे। आज वे दिन स्मृति शेष बन गए हैं। राजनीति के चक्कर ने भाई-भाई में फूट डाल दी फिर अन्यों की कौन कहे। वर्ष में अनेक चुनाव होते हैं जिन्होंने सब को महत्त्वाकांक्षी बना दिया। दादा पोते तक एक साथ चुनाव में खड़े होकर एक दूसरे की टोपी उछालने में भी संकोच नहीं करते। किन्तु मैं सोचता हूँ कि आज के लोग समाजवाद का नारा लगाते हैं किन्तु पहले लोग सच्चे समाजवादी थे।

मैं भी कहां से कहां चला गया। विषय था वैदिक समाजवाद और ले बैठा ग्राम्य समाजवाद। वस्तुतः वेद तो मानववाद का उद्घोषक है। वह तथाकथित जातिवाद का समर्थक नहीं है। जाति तो सब मानवों की एक है और वह है मनुष्य। वेद का सन्देश है कि तुम सब मनुष्य बनो, मानवता की रक्षा करो।

मनुर्भव।। ऋ० १०। ५३। ६

वेद मानव को प्रवृत्ति की दृष्टि से दो प्रकार के बतलाता है—आर्य और दस्यु।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवः।।

दस्यु उत्पीड़क को कहते हैं। वह तो शोषक है। वह समाज को देने वाला नहीं अपितु लेने वाला है। वेद उसे भी आर्य अर्थात् श्रेष्ठ सदाचारी परोपकारी तथा उच्च विचारों वाला बनाने का आदेश देता है—

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।।

सब को आर्य बनाते चलो।

आर्य वेदानुगामी है। राष्ट्र को खाने के लिए मुँह बाये खड़े अज्ञान, अन्याय, अभाव तथा असहयोग को मिटाने के लिए शिक्षक, रक्षक, पोषक तथा सेवक की नितान्त अपेक्षा है। इन्हें ही क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहा है। पुरुष सूक्त में इन्हें शरीर के अंगों से उपमा देते हुए मुख, बाहु, ऊरु तथा पग बतलाया है। जैसे शरीर इनमें से एक के न रहने पर मृत या अपंग हो जाता है तथा चारों का अपने आप स्थान पर महत्त्व है इसी प्रकार समाज भी चारों वर्णों के सहारे जीवित है। देखिए—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।। यजु० ३१। ११

इन चारों को अपने कार्य का रुचि तथा सामर्थ्यानुसार वरण करने से, चुनने के कारण वर्ण कहा गया है। इनके कार्य भिन्न हैं किन्तु हैं ये समाजरूपी शरीर के अवयव। इनमें परस्पर ऐक्य तथा बन्धुत्व है। शरीर के पैर में काँटा लगने पर जैसे आँखें उसके दर्द से आँसू बहाती हैं, हाथ काँटा निकालता है। ऐसे ही शूद्र तक की पीड़ा को ब्राह्मण, क्षत्रिय अनुभव करता तथा क्षत्रिय उस पीड़ा को मिटाता है। वेद में जब ज्ञान की दीप्ति तथा प्रिय बनने की कामना की है, तो वहाँ चारों वर्णों में से किसी को भी छोड़ा नहीं है अपितु चारों के लिए इनकी प्रार्थना की गई है। यथा हि—

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।

रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्।। यजु० १८। ४। ८

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।

प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये।। अथर्व० १९। ६२। १

वेद में प्रभु यह भी आदेश देते हैं कि मैं तुम को पराया दुःख अपना समझने वाला, समान विचारों वाला तथा द्वेष रहित करता हूँ। आप एक दूसरे से ऐसे प्रेम करो जैसे गाय अपने सद्योजात बच्चे से करती है।

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।

अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।। अथर्व० ३। ३०। १

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेद तो यह भी सन्देश देता है कि मानव मानव की सब प्रकार से रक्षा करे, दुर्गुण से भी, दुर्व्यसन से भी, पाप से भी, अपराध से भी तथा बाह्य शत्रु से भी।

पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः।। यजु०

भेदभाव की दीवारों का वेद समर्थन नहीं करता। वह तो विश्व-बन्धुत्व का प्रतिपादक है। बन्धुत्व की चरम परिणति मैत्री में है। मैत्री में न बड़े-छोटे का भाव रहता है और न गरीब-अमीर का। वेद इसी मैत्री का सन्देशवाहक है। एक मन्त्र में ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि —हे पापनाशक प्रभो ! आप मुझे ऐसी दृढ़ता दो कि विश्व के सब प्राणी मुझे मित्र दृष्टि से देखें। मैं भी सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूं। हम परस्पर एक-दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखते रहें। मन्त्र है—

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।

यजु० ३६।१८

वेद समता का सन्देश देता है। उसके अनुसार—"देखने में दोनों हाथ एक जैसे लगते हैं पर वे कार्य में एक समान व्यापक नहीं होते। एक माँ से उत्पन्न दो बछड़ी समान रूप से दूध नहीं देतीं। दो जुड़वां भाई समान सामर्थ्य वाले नहीं होते, न दो एक वर्ण के लोग बराबर होते हैं।" फिर भिन्न वर्ण के लोग समान न हों तो आश्चर्य ही क्या। कैसी उदारभावना का शिक्षक है वेद। देखिए—

समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः संमातरा चिन्न समं दुहाते।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित् सन्तौ न समं पृणीतः।।

ऋ० १०।११७।९

वेद के अनुसार तो "कोई बड़ा है न छोटा, परस्पर भाई हैं। सौभाग्य के लिए सब मिलकर बढ़ें।" न जाने ऊँच-नीच की भावना मनुष्यों में कहाँ से आ गयी। वेद तो सब मानवों को यही सन्देश देता है कि —

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।।

ऋ० ५।६०।५

वेद का यह भी आदेश है कि एक ही घर के लोग विभिन्न वर्णों का कार्य करते हुए एक ही छत के नीचे प्रेमपूर्वक रह सकते हैं। इससे जन्मना जाति का प्रबल खण्डन हो जाता है। वेद के अनुसार माता जिस कार्य को कर रही है उसका वर्ण वही है, पिता जिस कार्य को कर रहा है, उसका वर्ण वही है तथा पुत्र जिस कार्य को करता है उसका वर्ण वही है। एक मन्त्र में कहा है—मैं शिल्पी हूँ, पिता वैद्य हैं, माता पत्थर का कार्य करती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है, धन के इच्छुक हम ऐसे मिल कर रहते हैं जैसे गोशाला में गौएं मिल कर रहती हैं।

कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना।

नान धियो वसुयवोऽनु गा इव तस्थिम।। ऋ० १। ११२। ३

वेद में प्रभु आदेश देते हैं कि तुम्हारा जो पीने का स्थान समान अर्थात् एक हो, भोजन करने का स्थान एक साथ हो, कर्त्तव्य के जुए में भी तुम्हें साथ ही जोतता हूँ। कैसा एकता तथा समानता का उपदेश है। यथा—

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।।

अथर्व० ३। ३०। ६

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेद के अनुसार चारों वर्णों के लोगों के कार्य भिन्न होने पर भी वे अपने को एक समझते हैं। वे चारों एक ही समान शरीर के विभिन्न अंग हैं। सब में तेजस्विता हो, सब में प्यार हो। सब सहृदय, समान विचार वाले, ऊँच-नीच की भावना शून्य होकर भाइयों की भांति रहें। समाज तथा अपने सौभाग्य के लिए सब मिल कर आगे बढ़ें। एक दूसरे के मार्ग के कण्टक न बन कर एक दूसरे को आगे बढ़ाएं। साथ-साथ खाएं, साथ-साथ जल रस पीएं। याद रखो तुम सब मनुष्य हो केवल मनुष्य। यह है वेद का मानववाद, समाजवाद।

(७५वें पृष्ठ का शेष)

के लिए 'धर्मनिरपेक्ष ताकतों' को एक करने की बात करते हैं। जिस प्रकार यातायात के राष्ट्रीय मार्ग एक नहीं हो सकते, इसी प्रकार कथित धर्म-निरपेक्ष अथवा पन्थ-निरपेक्ष समुदाय या दल कभी भी एक नहीं हो सकते। हाँ, ऐसे दल मिलकर राष्ट्र में अस्थिरता उत्पन्न करते रहे हैं और भविष्य में भी करते रहेंगे। यह एक अशुभ लक्षण है।

इस प्रकार समाज में विभाजकों को समाप्त करने का गुरुतर भार आर्यसमाज के कन्धों पर है। आर्यसमाज ही सच्चा पन्थ-निरपेक्षक संगठन है, जिसमें संकीर्णता, संकुचित तथा साम्प्रदायिकता का तनिक भी अंश नहीं है। यह तो सार्वभौम धर्म को मानने वाला, सार्वभौम धर्म का प्रचारक एक महान् मिशन है।

ऐसे पुनीत अवसर पर आर्यसमाज अपने सार्वकालिक और सार्वभौमिक वैदिक विचारों के प्रचार-प्रसार में लग जाये, तभी भारत के साथ ही साथ विश्व का कल्याण सम्भावित है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रिय पाठको !

आपकी प्रिय पत्रिका "दयानन्द सन्देश" कई वर्षों से आपकी सैद्धान्तिक ज्ञान पिपासा को तृप्त कर रही है। पत्रिका का कार्यान्वयन सुचारू रूप से करने के लिये आपकी ओर से हमें सहयोग व उत्साहवर्धन हमेशा प्राप्त होता रहा है। इसके लिये आप धन्यवाद के पात्र हैं।

आपको यह विदित ही है कि "आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट" में मात्र लागत मूल्य पर साहित्य विक्रय किया जाता है। इस समय पत्रिका के लिये लिया जाने वाला शुल्क पत्रिका की सभी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये अपर्याप्त प्रतीत होता है। सभी प्रकार के परिचालन व्यय अत्यधिक बढ़ गयें है।

अतः अक्टूबर 98 माह से पत्रिका का वार्षिक शुल्क पचास रुपये तथा आजीवन शुल्क पांच सौ रुपये किया जा रहा है। आशा करते है आप इसे सहर्ष स्वीकार करेंगे। व अपना सहयोग पूर्व की भांति पूर्ण रूपेण बनाये रखेंगे। 30 सितम्बर 98 तक प्राप्त होने वाले शुल्क पूर्व निर्धारित राशि के अनुसार ही लिये जायेंगे।

धन्यवाद

भवदीय
सोमेश कुमार
व्यवस्थापक
आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आजीवन सदस्यों की सूची

३११ श्री नरेन्द्रकुमार आर्य C/o सन्त देवादास बगीची पुलिस लाइन के सामने, नारनौल जि० महेन्द्रगढ़ (हर०)

३१२ श्री मदनलाल गुप्त, Rtd. T.R.A. छाबड़ा, कोटा (राज०) ३२५२२०

३१३ श्री कृष्णचन्द्र S/o श्री नन्दराम जी पटेल, ग्रा० पो० भौलाना, तह० बडनगर, जि० उज्जैन (म० प्र०)

३१४ श्री रामनाथ माली म० न० २४ डी, सब्जी मण्डी, नियर पोस्ट ऑफिस, साहूनगर, सवाई माधोपुर (राज०) ३२२०२२

३१५ श्री पन्नालाल अवधेश कुमार, ५२, धरनीधर, जौनपुर (उ०प्र०) २२२००१

३१६ श्री रतिराम आर्य, ग्रा० पो० खरमान, जि० रोहतक (हर०) १२४५०७

३१७ श्री सिद्धगोपाल सेठ, बालापुर, गाजीपुर (उ०प्र०) २३३२२७

३१८ श्री विनोदकुमार शास्त्री, म०न० ५५२, तुराव नगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)

३१९ श्री विजयकुमार आर्य स्नेही सर्विस सेण्टर, बेतूलगंज, बेतूल (म०प्र०)

३२० श्री तेजपालसिंह, B.D.O. दयाल कालोनी, हकीकत नगर, सहारनपुर (उ०प्र०)

३२१ श्री तेजराज भाटी, मु०पो० खुड़ाला, रेलवे स्टेशन फालना, जि० पाली (राज०) ३०६११६

३२२ श्री सुभाषचन्द सिंहल, कमल पब्लिक स्कूल, फिरोजपुर, झिरका, जि० गुड़गांवा (हरयाणा)

३२३ श्री सीताराम घीसाराम आर्य C/o गायत्री स्टुडियो, कोठा वाली चाली, चमनपुरा, अहमदाबाद (गुजरात)

३२४ श्री डॉ० योगेशराम जी, ग्रा०पो० मथुरापुर, जि० भागलपुर, (विहार) ८१३२२२

३२५ श्री उम्मेददयाल छीपा धनराज नेकजी, मु० पो० खुडाला, रेलवे स्टेशन फालना, जि० पाली (राज०)

३२६ श्री छैलबिहारीलाल गोयल, बारहद्वारी, पसरट्टा बाजार, हाथरस-२०४१०१

३२७ श्री मूलशंकर रामचन्द्र रामचन्द्र जी आर्य, कापसे २०४, मोहिनी अपार्टमेण्ट (स्टेशन रोड कलवा) मु०पो० कलवा, जि० थाने (महाराष्ट्र)

३२८ श्री सचिव श्यामलाल सार्वजनिक वाचनालय उद्‌गीर मु०पो० उद्‌गीर, लातूर (महाराष्ट्र)

३२९ श्री अर्जुन सरसम्बे श्रीशिव छत्रपति नगर, तुलजापुर, उस्मानाबाद (महा०)

३३० श्री गिरधारीलाल वर्मा आर्यसमाज मन्दिर, रायचूर हरीहर रोड, रायचूर (कर्नाटक)

धर्मपाल आर्य मन्त्री

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सूची पत्र

वर्ग -'क'	छपा मूल्य	थोक मूल्य
● सत्यार्थ प्रकाश डेमी अजिल्द	२५)	१४००) सैकड़ा
● सत्यार्थ प्रकाश कपड़ा जिल्द	२६)	१६००) सैकड़ा
● सत्यार्थ प्रकाश सजिल्द	२७)	१८००) सैकड़ा
● पंच-महायज्ञ विधि	४)	२००) सैकड़ा
● वैदिक सन्ध्याहवन पद्धति	३)	२००) सैकड़ा
● संध्योपासनविधि	३)	२००) सैकड़ा
● गोकरुणानिधि	२)	१००) सैकड़ा
● आर्योद्देश्यरत्नमाला	१)	५०) सैकड़ा
● महर्षि दयानन्द की विशेषताएं	१)	५०) सैकड़ा
● व्यवहारभानु	२)५०	१५०) सैकड़ा
● नित्यकर्मविधिः	१०)	७००) सैकड़ा
● सत्यार्थ प्रकाश कवितानुवाद	६)	४००) सैकड़ा

वर्ग 'ख'	**साधा० संस्करण**	**वि० संस्करण**
२५ प्रतिशत छूट वाली	छपा मूल्य	छपा मूल्य
● सत्यार्थ प्रकाश स्थूलाक्षर		
(४७ वें संस्करण तक)	६०)	
(४७ वें संस्करण के बाद)	८०)	
● मनुस्मृति प्रचार संस्करण	१५०)	
● मनुस्मृति (पुस्तकालय संस्करण)	.	१८०)
● वेदार्थ कल्पद्रुम (द्वितीय खण्ड)	.	२००)
● वेदार्थ कल्पद्रुम (तृतीय खण्ड)	-	२००)
● विशुद्धमनुस्मृति	१००)	-
● योगदर्शन भाष्य	१००)	-
● दयानन्द ग्रन्थमाला भाग-3	६०)	
● सत्यार्थ प्रकाश समीक्षा	१०)	
● दयानन्द यजुर्वेद भाष्य भाषानुवाद भाग-1	१००)	-
● वैदिक कोषः	२००)	-
● पैप्पलादसंहिता	-	४००)
● दयानन्द ऋग्वेदभाष्य भास्कर (द्वितीय भाग)	७०)	

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

● महर्षिजीवनचरित्र (पं. लेखरामकृत जीवनी का हिन्दी रूपान्तर)	२००)	-
वर्ग 'ग'	**साधा० संस्करण**	**वि० संस्करण**
● ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका	४०)	-
● संस्कार विधि	१५)	-
● प्रार्थना सुमन	४)	-
● वेदार्थ प्रकाश	२२)	-
● आर्याभिविनयः	१२)	-
● लघुग्रन्थ संग्रह	२२)	-
● सुरवाणी प्रशस्तिका	६)	-
● शास्त्रार्थ संग्रह	२०)	-
● उपनिषद् भाष्य	२२)	-
● उपदेश मंजरी	१५)	-
● चतुर्वेदमन्त्रानुक्रमणिका	२०)	-
● आर्यसंगीतसागर	१५)	-
● योगमीमांसा	१५)	-
● पारस्कर गृह्य सूत्र	१०)	-
● मनु का विरोध क्यों	५)	-
● सुख-दुःख मीमांसा	१०)	-
● महर्षि स्टीकर बड़े	२)	
● स्वामी श्रद्धानन्द स्टीकर	२)	
● पण्डित लेखराम का बलिदान	१०)	-
● गौ रक्षा क्यों	१०)	-
● संस्कार भास्कर	१०)	-
● कालाकालमृत्यु विचार	१०)	-
● मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम	१०)	-
● संस्कार विधि (उड़ीया)	४०)	-
● हृदयमीमांसा	१०)	-
● योगेश्वर श्रीकृष्ण	१०)	-
● योगमीमांसा (इंगलिश वाला)	१५)	-
● महर्षि चित्र	६) प्रति	५००) सैकड़ा
● महर्षि स्टीकर (छोटे)	१) प्रति	५०) सैकड़ा
● आर्य मान्यताएं	१०)	

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

- दयानन्द सन्देश (मासिक) के विशेषांक (नेट मूल्य)
- दयानन्द सन्देश (मासिक) वार्षिक सदस्यता शुल्क२५)
- दयानन्दसन्देश आजीवन सदस्यता शुल्क २५०)
- **ओ३म् ध्वज**
- ओ३म् ध्वज साइज ४८" मूल्य २५/-
- ओ३म् ध्वज साइज ३०" मूल्य २०/-
- ओ३म् ध्वज साइज २४" मूल्य १०/-
- ओ३म् ध्वज साइज १८" मूल्य ८/-
- ओ३म् ध्वज साइज ३०" (साटन) मूल्य ७५/-
- ओ३म् ध्वज साइज ४८" (साटन) मूल्य १२५/-

'आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट' के उद्देश्य

वैदिक आर्ष साहित्य का अनुसन्धान तथा प्रकाशन करना।

अनुसन्धानात्मक 'दयानन्द सन्देश' मासिक पत्रिका का प्रकाशन करना।

महर्षि-दयानन्द वेदभाष्य, उनके बनाये ग्रन्थों तथा जीवन-चरित्रों का प्रकाशन करना।

प्राचीन अप्राप्य एवं दुर्लभ आर्ष साहित्य के हस्तलेखों की खोज करना तथा उनको प्रकाशित करना।

अनुपलब्ध ग्रन्थ ब्राह्मणमंत्र व्याख्यात सूची

दयानन्द यजुर्वेद भाष्य भास्कर, यजुर्वेद भाष्य भाषानुवाद सत्यार्थप्रकाश के संशोधनों की समीक्षा, यजुर्वेद-देवतार्थ विषयसूची, जीवात्मा-ज्योति, दयानन्द-दिग्विजयार्क, सृष्टिसंवत्, प्रमाण सूची,

दयानन्द सन्देश विशेषांक

यथार्थ वेदान्त, वैदिक-मनोविज्ञान, वेदार्थ-समीक्षा, वेद में अनित्य-इतिहास नहीं है, वेद और महर्षि दयानन्द ऋषिबोध, वेद, सुख, दुःख मीमांसा, पं. लेखराम बलिदान शताब्दी

प्राप्ति स्थान :

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

455, खारीबावली, दिल्ली-6

427, नयाबांस, दिल्ली-6

दूरभाष : 3953112, 3958360

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रजिस्टर्ड नं. DL 11315/98
आर/आर/नं. 25587/73
Post in New Delhi PSO
on 17-18/8/98

अगस्त 1998

बिना टिकट भेजने का लाईसेन्स नं.
यू (डी.एन.) 144/98
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/98

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।

२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगाये, यदि अंक न पहुँचा हो।

३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।

४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।

५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

बच्चे, दीर्घजीवी विद्वानों के लिए सुनहरा अवसर
भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व
तार्किक समीक्षा के लिए
दो रंग में सुन्दर आकर्षक छपाई
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

स्थूलाक्षर बड़े साइज
20x30x8 में

सत्यार्थप्रकाश

मूल्यः लागत मात्र से कम रु० प्रति
प्रत्येक प्रति पर २५% कमीशन
१० से ज्यादा प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन
एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें।

प्राप्ति-स्थान : आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,
४५५, खारी बावली दिल्ली - ६
दूरभाष:- २३८३६०, २३३११२, २९२२६१२

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में..
ग्राम..
डा०..
जिला..

मुद्रक : ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली-110006

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi